हीरे की अँगूठी पिन्हाकर हर तरह से खुश करने की चेष्टा करूँ।

मुझे अन्दर जाते ही घुटन होने लगी—रंगीन बन्द कमरा - यानी रंगीन सीलिंग, रंगीन दीवारें, रंगीन पंखा, रंगीन परदे, रंगीन पलंग, रंगीन कपड़े, रंगीन बहू—इतना सब रंगीन था कि सब बदरंग लग रहा था। इत्रों की गन्ध से नाक भिन्ना उठी। मैंने झट खिड़की खोल दी और बाहर की ठंढी हवा ने मुझे राहत पहुँचाई। दूर-दूर तक फैली हुई सफेद धप्-धप् करती चाँदनी को देखकर जब मैं पलटकर लहालोट किरण को देखता तो जीवन के जाने कितने पन्ने उभर आते और मुझे ऐसा प्रतीत होता कि आग की लपटों से धू-धू करते इस कंगूरे से कूदकर यदि बाहर बहती हुई दूध की धार में समा जाऊँ तो शरीर के फफोले शान्त हो जाएँगे। परन्तु यह देखो, किरण ने मुस्कुरा दिया—'आप बड़े परीशान जान पड़ते हैं!...हाँ, गर्मी बहुत है।...आइए, इधर बैठिए, मैं पंखा झल देती हूँ।' किरण ने सीलिंग में टँगे हुए पंखे की डोरी पकड़ ली। कुछ राहत हुई—कुछ लाज भी छूटी—कंठ से वाणी भी फूटी ......

जाने क्यों वह रात बड़ी लम्बी रही। मैंने चाहा, रात जल्द कटे। इसीलिए किरण को कहानी भी सुनाना शुरू किया—

किरण का बड़ा मनोरंजन हुआ और अन्त में उसने हँसते-हँसते कहा भी—'बड़ी दिलचस्प कहानी है—ऐसी सुन्दर माला को कौन न गले से लगाना चाहेगा ! मेरी छाती से वह बराबर सटी रहेगी ।

आँखें झिपीं-खुलीं, खुलीं-झिपीं कि भोर हो गया । मै धड़फड़ा कर उठा हूँ तो देखा, किरण जाने कबसे मेरी छाती में समाकर गहरी नींद सो गई है—इतनी गहरी, इतनी निश्चिन्त कि जैसे आज से मै ही उसकी तमाम परीशानियों, तमाम उलझनों को हरनेवाला शिव हूँ और वह पार्वती मेरी जटा में बँधे हुए सर्प के फुफकार की तनिक भी परवाह न कर उसकी बगल में ही जगमगाते हुए शशि से खेल रही हो । इस दृश्य को देखकर किसकी छाती से करुणा न फूट पड़ती ?

मै कमरे में टहल रहा हूँ और गुनगुना रहा हूँ—'हलाहल पी जाता संसार ।'

कि किरण उठ गई—अपने अस्त-व्यस्त कपड़ों को ठीक कर मेरी ओर हँसती हुई देखने लगी —

'क्या गुनगुना रहे हैं ?'

'वही, बच्चन की प्यारी पंक्तियाँ···

इसी मधु का लेने को स्वाद,
हलाहल पी जाता संसार ।'

'ओ, तो आपको कविता सूझ रही है ! हाँ, देखिए, रात की गर्मी शान्त हो गई और बड़ी सुहानी हवा चल रही है ।' वह मुस्कुरा उठी ।

'हां, कहो, कैसी नींद आई ?'

'बड़ी गहरी । स्वप्न में माला को देखती रही—उससे बातें भी करती रही ।'

'बड़ी जल्दी दोस्ती लगा ली—'

'हाँ, अब जी चाहता है उससे मिलने का ।'

'हाँ, एक दिन उससे मिलने काशी चलेंगे ।'

उसके चेहरे पर हँसी नाच गई । मैं भी खुश हुआ । ····तो समझो, यही मेरी कहानी है ।

···हाँ, लताजी के विषय में तो पूछना भूल ही गया । लाख कोशिश करने पर भी मैं उनकी शादी में नहीं आ सका । लिखना, कैसी रही । आशा है, सब खुशी-खुशी निभ गई होगी । माताजी को प्रणाम ।

सस्नेह,

अजीत

✥

प्रिय अजीत बाबू,

दीदी की शादी की मिठाइयाँ अभी खत्म भी न हुई थीं कि आपकी शादी की मिठाई तथा पत्र मिला। धन्यवाद। किरण-ऐसी बहू को पाकर भी आपने मुझे याद किया—इस बात की कल्पना से ही मैं नाच उठी।

दीदी की शादी बड़े मज़े में हो गई। कोई झंझट न रही—कोई तूल न हुई। जिसके पास पैसे होते हैं, वे टीमटाम करते हैं—यहाँ तो महज़ रस्म की तामीली थी। हाँ, वर-पक्ष से कोई बदगुमानी न हुई। दीदी बड़ी खुश थीं—खूब प्रसन्न। मगर मुझे पग-पग पर आपके लिए ताने सुनने पड़ते रहे—जैसे मैं ही आपकी सब कुछ हूँ। ताने सुनते-सुनते मैं तो तार-तार हो गई—इतनी ऊब गई थी कि कहीं भाग जाने का मन करता रहा। परन्तु, भागकर जाती कहाँ?····

और तो और, आपके प्रिय मित्र और मेरे जीजाजी की भी आपकी ओर से नज़र कुछ मैंने बदली-बदली पाई। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु इस संसार में सब कुछ सम्भव है।

शादी आई और चली गई, परन्तु घर को कर्ज के भार से दबा गई। हमारे पास इतनी पूँजी न थी कि हम उस भार को सँभाल सकते। बस, बिखर गए। अब माँ कहती है—'बेटी, पढ़ाई छोड़ दो। अब तुम्हारी शिक्षा का भार भी नहीं उठा सकती। घर पर ही 'प्राइवेट' पढ़ो। फिर देखा जाएगा।' मैं परीशान हूँ। दीदी और आपके जाने के बाद यह घर मुझे काट रहा है। अकेली पड़ी-पड़ी मैं पागल हो जाऊँगी। यदि आप उस दिन मिजराब न खरीद देते तो आज मेरी क्या हालत होती? आज तो मेरा एकमात्र वही सहारा है। जब जी ऊबता है तो सितार उठा लेती हूँ। कोई गत बजाकर दिल को शान्त करती हूँ। परन्तु, यह सितार कितने दिनों तक मेरा सहारा होगा—राम जाने! यदि कालिज जाती तो दिन भर की ऊब से जान बचती। घर में कर्ज से भरी दम घोटती हवा में न तो सितार बजा पाऊँगी और न पढ़ ही सकूँगी। देखिए, क्या होता है! माँ से पढ़ने के लिए पैसे कैसे माँगू? बेचारी कहाँ से लाएगी? मैं तो 'प्राइवेट ट्यूशन' कर लेती, मगर माँ दूसरे के घर में जाकर पढ़ाने को तैयार

नहीं होती। कहती है—जवान हुई, कालिज में जाना और है, किसी अनजान घर में जाना और।

कुछ समझ में नहीं आता। भविष्य अन्धकारमय दिखता है।—कभी-कभी दर्शन देने की कृपा करेंगे। किरण बहन से मिलने की बड़ी लालसा है। सौभाग्यवती किरण का सौभाग्य अचल रहे—यही मेरी शुभकामना है।

आपकी,

माला

किरण, अजीत और भाभी जब सुबह के नाश्ते पर बैठे थे तो डाकिये ने आकर यह खत दिया। अजीत माला के अक्षरों को पहचानता था। उसने झट लिफाफा खोलकर पढ़ना शुरू किया तो भाभी ने टोका—'बड़े तन्मय हो खत पढ़ रहे हैं--छोटे बाबू! किसकी मुबारकबादी है?'

'नहीं भाभी, यों ही·······।' वह पढ़ता ही गया। पढ़ते-पढ़ते उसका चेहरा उदास हो गया। नाश्ता करने से भी जी उचट गया।

भाभी चली गई तो किरण ने पूछा—'चाय बनाऊँ?'

'नहीं, एक गिलास ठण्डा पानी ही पिलाओ।'

'नहीं-नहीं, चाय तो बन गई है।'

'तो लाओ।'

अजीत एक सिप चाय पीता फिर खत दुबारा पढ़ने लगता।

किरण अभी-अभी नहा-धोकर, शृंगार-पटार कर, नई-नई दुल्हन की साज-सज्जा में बैठी बड़ी साफ-साफ-सी सुन्दर-सुघर दिख रही है। कलाई से लेकर किहुनी की दीवार तक लाल-लाल रेशमी चूड़ियाँ तथा माथे पर लाल बिन्दी, चमचमाती टिकुली—उसके सहज शृंगार में चार चाँद लगा रही हैं। परन्तु अजीत की आँखें इन्हें न देखकर कागज के अक्षरों पर ही बार-बार नाच रही हैं। अपनी चंचल लटों को सँभालती हुई किरण ने पूछा—'किसका खत है?'

'माला का……।'—अजीत ने चिट्ठी किरण की गोद में फेंक दी और ठंडी चाय का सिप लेने लगा।

'कोई खास बात है?'

'क्या बताऊँ,—बड़ी बुरी हालत है उसके परिवारवालों की। एक ही बेटी की शादी में घर बिखर गया। कुछ पूँजी तो थी नहीं, कर्ज के बोझ से दब गए। मारी गई बिचारी माला—पढ़ाई भी छूट गई।'

'यह तो बड़ा बुरा हुआ।'

'हाँ, खत पढ़ो ना।'

किरण पत्र पढ़ती है—गम्भीर हो जाती है। कहती

है—'क्या बताऊँ, ऐसी स्थिति देखकर बड़ा दुख होता है। बड़ी बेबस हो गई बेचारी। इस देश की अजीब हालत है। फूटती कोपलें शिक्षा के अभाव में मुर्झा जाती हैं।....'

'और यहाँ की शादियाँ भी तो बहुत घरों को तबाह कर देती हैं। नहीं करते-करते भी टीमटाम का ताँता टूट नहीं पाता। शादी में सादगी का संचार नहीं किया जाएगा तो कितने घर बर्बाद हो जाएँगे।'

'हाँ, देखा नहीं, हमारी ही शादी में पैसे की कितनी बड़ी बर्बादी हुई है! यह रस्म तो वह रस्म, यह मुँह-दिखाई तो वह पाँव-लगाई! क्या तबाही होती है—वह तो कोई बेटी के बाप से पूछे। और, बरातियों के तान-तेवर के तो क्या कहने! पग-पग पर उनके कदमों की धूल न चाटो तो धूल फाँको, धौंस सहो। मुआ कोई न तेल की शीशी लाता है न साबुन। कितनों के तो तौलिया गायब। और तो और, जिसे कभी घी देखने को भी नसीब न हुआ वह भी चाहता है कि उसके कमरे में घी के दिए जलाए जाएँ, ओठ और उँगलियाँ घी से तर रहें। मेरे पिता को जो परीशानी हुई है—वह वही जानते हैं—उफ़! और मज़ा यह कि कोई भी पक्ष सन्तुष्ट नहीं। इतना करने पर भी सभी रुष्ट ही रहते हैं। बात यह है कि दोनों ओर से एक-दूसरे के प्रति प्रेम तो रहता नहीं—

बस, दोष निकालने में ही लगे रहते हैं।'

'तुम ठीक कहती हो—ग़रीब देश के लिए 'सिविल मैरेज' ही एकमात्र निदान है। आध घण्टे में ही चट मँगनी, पट व्याह। रात में दो-चार दोस्त-अहबाब खा-पी लिए, हँस-गा लिए। बस—।'

'ख़ैर,······यह बताइए, माला का क्या होगा ?'

'आज ही तुम उसे एक पत्र लिख दो कि मैं जल्द ही काशी जाऊँगा और प्रिंसिपल से मिलकर उसे फ्री कराने की कोशिश करूँगा। तबतक वह अर्ज़ी तो भेज दे, वर्ना समय बीत जाने पर कुछ न हो सकेगा। आजकल कालिज में नाम लिखा लेना, आसमान से फूल तोड़ लेना है। मैं बाहर कुछ लोगों को विदा करने जाता हूँ—तुम अभी लिख दो।'

किरण के चेहरे पर हर्ष और विषाद की दो समानान्तर रेखाएँ दौड़ गईं। कौन गहरी, कौन हल्की—कौन जाने ! मगर ऐसा क्यों ? आखिर क्यों ??

'क्यों माला, तुमने ऐडमिशन के लिए दरख्वास्त भेजी या नहीं ?'—अजीत ने माला के कमरे में प्रवेश करते हुए पहला सवाल पूछा।

माला सितार बजा रही है। अजीत को देखते ही चौंक गई और सितार रखकर खड़ी हो गई। पतली-पतली-सी वह कुछ अजीब लग रही है।

'ओ,...आप !....आप कब आए ?'

'बस, अभी-अभी चला ही आ रहा हूँ! स्टेशन से सीधे। किरण भी आना चाहती रही मगर घर पर अभी रिश्तेदार टिके हैं, इसलिए छोड़ दिया—'

'उनसे मिलने की बड़ी लालसा है।'

'वह लालसा जल्द ही पूरी होगी।'

'.....................'

'मगर तुम कैसी हो गई हो !'

'जैसी थी—वैसी ही हूँ।....क्यों...?'

'नहीं, जैसी रही उससे बिल्कुल भिन्न। यह दुबली-दुबली काली-काली लकीर-सी।'

'हाँ, इधर कुछ बीमार रही—बस, यों ही।'

'इतने दिनों बाद तुमसे मिलने आया। सोचा था, तुम्हें बहुत खुश पाऊँगा, ; मगर यहाँ तो—.'

अजीत चुप हो गया—चिन्तित-सा। माला नहीं चाहती थी कि उसे कोई दूसरा परखे—उसने झट हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—'नहीं-नहीं, मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ। आप भी कैसी बातें करते हैं!'

परन्तु वह अभिनय ठीक-ठीक नहीं कर पाई। मालूम होता था, अब रोई—तब रोई।

'हाँ, क्या किया एडमिशन का?'

'अर्जी दे दी है। उम्मीद है, हो जाएगी। मगर, आपने फ़िज़ूल ज़िद पकड़ ली। एडमिशन हो जाने से ही तो बेड़ा पार हो नहीं पाएगा—आगे का खर्च कैसे चलेगा?'

'पहले नाम तो लिखा जाय, फिर वह मंज़िल भी तय होगी।'

अजीत फिर चुप हो गया। घर के चारों ओर नज़र दौड़ाई। देखा, हर कोने में—हर दीवार पर एक सूनापन छा

गया है। सब रीता-ही-रीता दिखता है। लगता है, घर की सारी पूँजी ही शादी में समाप्त हो गई।

'कौन है माला ?'—माताजी ने पुकारा।

'अजीत बाबू आए हैं, माँ !'

'ओ, कौन ? अजीत ?—दुलहिन मुबारक हो बेटा ! छिपे-छिपे शादी कर ली और हमें एकदम अन्त में खबर दी।'—कमरे में प्रवेश करते हुए माताजी ने कहा।

'प्रणाम ! हाँ, कुछ ऐसी चटपट हो गई कि क्या बताऊँ ! मुझको खबर होती तब तो आपको पहले खबर दे पाता !' अजीत ने झेंपते हुए कहा।

'कहो, बहू कैसी है ?'

'मैं क्या जानूँ ! आप किसी दिन खुद देख लीजिएगा तो कहिएगा आपको अच्छी लगी या बुरी। आखिर अच्छाई और बुराई तो सब आँखों का खेल है।'

'हाँ, यह तो ठीक है, मगर तुम्हें पसन्द आई या नहीं ?'

'जब शादी हो गई तो पसन्द ही आ गई।' दोनों हँस पड़े।

'माँ, लताजी की शादी तो खुशी-खुशी हो गई न ?'

'हाँ बेटा ! भगवान की बड़ी कृपा रही। सब पार लग गया। मगर मैं तो छूछी हो गई। सब पैसे खर्च हो गए।

अमीरों से हमारी क्या रिश्तेदारी, मगर राज बाबू का यह बड़प्पन कि हमें उबार दिया। लता राज़ी-ख़ुशी है—बराबर ख़बर मिलती रहती है·······अब पारसाल माला को भी ब्याह दूँ तो छुट्टी पा जाऊँ। तभी मुझे सच्ची शान्ति मिलेगी।' माताजी ने बड़ी नम्रता से कहा। अजीत ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर कहती गईं—

'माला अभी पढ़ना चाहती है—मैं भी चाहती हूँ कि शादी तक पढ़ती रहे—मगर पैसे कहाँ, जो पढ़ाऊँ!·····।'

'माताजी, इसका ऐडमिशन तो कराइए। मैं अपने प्रोफ़ेसर साहब से कहकर इसे फ्री करा दूँगा।'

'फ्री होने से ही तो काम न बनेगा बेटा!'

'देखिए, किसी फंड से कुछ पैसे दिलवाने की भी कोशिश करूँगा—आप अभी ही हिम्मत क्यों हारती हैं? आपने इससे भी बुरा समय देखा है।'

'कुछ समझ में नहीं आता।'

माताजी फिर चौके में चली गईं तो माला ने पूछा—'आप ठहरे कहाँ हैं—सामान नहीं देखती हूँ।'

अजीत मुस्कुराने लगा।

'क्यों?·······'

'मैंने एक नौकरी कर ली है। काशी के समीप एक

कारखाने में। अच्छे पैसे मिलेंगे और अपने मन का काम सीखने का मौका भी मिलेगा।'

'नौकरी?'—माला को बड़ा आश्चर्य हुआ।

'हाँ-हाँ......।'

'और....रिसर्च...?'

'जिन्दगी के सभी सपने पूरे नहीं होते माला! बीवी घर में अनायास ही आ गई। मैंने सोचा—उसे घर पर अकेली कहाँ छोड़ूँ? फिर प्रतिदिन भैया-भाभी और माँ से पैसे माँगना गवारा न होता। बड़ी ज़लालत थी। इसलिए पैसे कमाना आवश्यक हो गया।'

अजीत ने बीच में ही पढ़ाई छोड़ दी—यह जानकर माला को बड़ी चोट लगी। अजीत की जैसे दुनिया ही बदल गई। माला अवाक् है।

'हाँ, तो उसी कम्पनी का काशी में एक 'गेस्ट हाउस' है, आज वहीं ठहर रहा हूँ मैं। साथ में कम्पनी के और लोग आए हैं। वे ही स्टेशन से वहाँ सामान ले गए हैं।

माला चुप है। क्या से क्या हो गया! सारी सृष्टि ही बदल गई जैसे।

सन्ध्या समय अजीत राज के घर पहुँचा। पता चला, राज बाबू अभी भी शयन-कक्ष में हैं। पहले सोचा लौट जाएँ।

फिर सोचा—अब मिलकर ही जाएँ। कभी-न-कभी रईसे-आज़म नीचे उतरेंगे ही। उसकी जान-पहचान के नौकर उसे घेरकर घर का कुशल-क्षेम पूछने लगे। उसने भी शिवटहल से पूछा—'कहो, बड़े बाबू की शादी बड़ी चुपचुप हो गई!'

'वाह भइया! हमीं से मज़ाक करते हो? आग तो तुम्हीं ने लगाई, अब बात बनाते हो? माताजी तुमपर बड़ी नाराज़ रहीं।'—शिवटहल ने मटकी मारी।

'वाह! मुझे तुमलोग मुफ्त में बदनाम कर रहे हो। मुझे कहाँ पता कि यह गुल खिल रहा है!'

'तुम्हें सब पता रहा गुरुघंटाल!'

'नहीं, सच मानो शिवटहल!'

'अब बात बनाने से फ़ायदा? जो होना था, सो हो गया। माँजी ने बड़ी मुँह की खाई। बड़ी हवेली में शादी करना चाहती रहीं, मगर इकलौता बेटा ज़िद पकड़ गया तो क्या करतीं?'—शिवटहल ने फिर मुस्कुरा दिया।

अजीत ने सोचा कि उठकर चल दे—माताजी के मिज़ाज से वाक़िफ़ था वह—मगर अब जाना अच्छा न होगा—इसलिए दिल मसोसकर बैठ गया।

कुछ देर बाद राज बाबू 'स्लीपिंग-सूट' पहने नीचे उतरे।

'वाह, तुम हो ! कब आए !'—राज ने अजीत से हाथ मिलाते हुए कहा।

'आज ही आया। सोचा, तुमको बधाई देता जाऊँ !'

'हाँ-हाँ, बड़े छिपे-रुस्तम निकले यार ! किसी को कानो-कान खबर भी नहीं और शादी हो गई !'

'हम छिपे-रुस्तम निकले कि तुम ? रात-दिन साथ रहे, मगर ऐसे उस्ताद हो कि कुछ पता ही न चला।'

'हाँ-हाँ, समझो—दोनों ही छिपे-रुस्तम निकले।'—राज ने व्यंग्यभरी निगाहों से उसे देखकर हँसना शुरू किया—दो-चार मिनट तक हँसता ही रहा। यह हँसी अजीत को अच्छी न लगी। मगर करता क्या ?

'इधर कैसे आना हुआ ? अभी तो छुट्टी काफ़ी बाकी है ?'

'यों ही चला आया······मैंने अब नौकरी कर ली है। उसी सिलसिले में काशी आना पड़ा इस बार।'

'नौकरी ? यह अच्छी रही !······हाँ, माताजी और माला से भेंट की ?'

'हाँ, वहाँ भी गया था।'

'दोस्त ! तुम चूकते नहीं'—राज फिर एक बार व्यंग्य की हँसी हँसने लगा। अजीत कुछ सहम गया। उसे माला की बातों पर विश्वास हो आया। लता ने राज के भी कान

भर दिए हैं और अब उसमें वह आत्मीयता, वह सामीप्य नहीं है जो पहले था।

'कुछ नाश्ता-पानी—शरबत-पान ?'

'नहीं भाई, इस समय कुछ भी नहीं। पेट भरा है।'

राज ने कुछ मिनटों तक इधर-उधर की बातें कीं। फिर उठ गया और बोला—'अजीत! मुझे लता को लेकर क्लब जाना है। एक पार्टी है—इस बार क्षमा करना।'

'हाँ-हाँ, तुम जाओ। मैं तो यों ही चला आया था।'

'धन्यवाद' कहता राज कोठे पर चला गया और अजीत अपने रास्ते की ओर।

✣

'बधाई माला ! बधाई ! लो, तुम्हारा नाम युनिवर्सिटी में लिखा गया। मिठाइयाँ खिलाओ।'— अजीत ने माला को झकझोरते हुए कहा। माला चौंक गई और माताजी भी आश्चर्यचकित हो गईं।

'बड़ी तेजी की तुमने बेटा ! मैं तो अभी पैसे ही जुटा रही थी कि तुमने नाम भी लिखा दिया। आखिर इतनी जल्दी ही क्या थी ?'

'माताजी ! इस साल जाने क्यों बहुत दरख्वास्तें पड़ी हैं। सोचा, आज ही नाम न लिखवा दूँ तो फिर बना काम बिगड़ जाएगा। पाकेट में पैसे थे, देकर तत्काल काम करा लिया। आप मुझे पैसे जुटाकर लौटा देंगी। आखिर इसमें हर्ज ही क्या है ?'

'हाँ, हर्ज तो कुछ नहीं है मगर फिर भी तुम्हारा कितना एहसान लूँ ?'

'माताजी ! फिर आप तकल्लुफ़ करने लगीं। काम से काम है—पैसे तो मुझे आपसे आज न कल मिल ही जाएँगे।' —अजीत ने माताजी को बड़ी नम्रता से समझाते हुए कहा।

माला का हृदय आज बल्लियों उछल रहा है। डूबते को एक सहारा मिल गया—घोर अन्धकार में आशा की एक हल्की किरण दिख गई। माताजी कुछ इधर-उधर की बातें कर जब चौके में चली गईं तो माला ने बड़ी आजिज़ी से कहा—'अजीत बाबू, मैं आपकी चिरऋणी रहूँगी। आपने मुझे एक नई ज़िन्दगी दे दी, वर्ना मैं तो निराश ही हो चुकी थी। उम्मीद है, समय अब आसानी से कट जाएगा। दीदी भी चली गईं, आप भी चले गए, अब तो घर काटने दौड़ेगा—यदि इतना भी न होता तो......।'

'तुम चिन्ता न करो माला ! हर परिस्थिति में अपने को ढालने की क्षमता रखो। मनुष्य के पास अक्षुण्ण दैवी शक्ति है। आखिर आनन्द भी मन की एक स्थिति ही तो है।' अजीत इतना कहकर सहसा रुक गया।

माला चुप है। उसकी सूरत पर उभरती हुई विविध रेखाएँ प्रश्न और उत्तर दोनों का काम कर रही हैं।

कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद माला ने फिर पूछा—'मगर पुस्तकों का क्या होगा?'

अजीत ने मुस्कुराते हुए अपनी अटैची खोल दी और हँसते हुए कहा—'ये रहीं तुम्हारी नई पुस्तकें। कुछ तो मैंने नई खरीद ली हैं—कुछ सेकन्ड-हैंड मिल गईं और कुछ दोस्तों से ले लीं।'

माला खुशी ने नाच उठी और कुछ-एक किताबों को हाथ में लेती हुई बोली—'सच, वाह, आपने तो मेरे लिए सारा प्रबन्ध ही कर दिया। बहुत-बहुत धन्यवाद।'

माला अटैची से एक-एक किताब निकालती, पन्ने उलटती, दो-चार पंक्तियाँ पढ़ती, बड़े कौतूहल से कुछ अजीत को सुनाती, फिर रख देती और बोलती—'किताबें बड़ी प्यारी हैं, पर स्तर बहुत ऊँचा है। बड़ी मिहनत करनी पड़ेगी मुझे। हाँ, जहाँ समझ में नहीं आएगा, आपको पकड़कर बुलवाऊँगी और आपको आना और समझाना होगा। समझे जनाब! जी, हाँ!··· मगर, आप तो मीलों दूर·········।'

'कोई बात नहीं। एक कार्ड डाल देना, मैं सर के बल चला आऊँगा।'

'यह भी अच्छी रही! न-न यह न हो सकेगा·····।'

फिर दूसरे ही क्षण उसकी सारी जिन्दादिली, सारी हँसी उड़ जाती और वह अनमनी-सी हो जाती तो अजीत कहता—संगीत के लिए मैंने कोई किताब नहीं खरीदी। किताबों से

ज्यादा तो तुम खुद जानती हो। फिर सितार तुम्हारे पास है ही। खूब रेआज़ करना और सौ में सौ पाना।'

वह हँस देती—'भई, रेआज़ करने में मन लगे, तब तो!'

'मन तो लगाने से लगता है माला! तुम लगी रहो तो वह लगते-लगते लग जाएगा, रमते-रमते रम जाएगा।'

'हाँ, कोशिश तो यही है।'

माला का मूड बनता-बिगड़ता रहता। जब वह उदास हो उठती तो अजीत बातें बदल देता—'माला! कल मैं राज के घर गया था मगर उसका व्यवहार पहले जैसा न लगा। बड़ा कटा-कटा-सा रहा। वह आत्मीयता, वह निकटता जाने कहाँ भाग गई और बीच में एक खाई—एक दूरी जैसी कोई चीज़ उभर आई है। लता ने तो भेंट भी न की। कहीं क्लब जाने की तैयारी रही होगी।'

'दीदी आपके नाम से जलती है।'

'क्यों?'

'क्योंकि आपने उसे ठुकरा दिया!'

'मगर अब तो उसकी शादी एक ऊँचे घराने में हो गई। उसे कोई मलाल न होना चाहिए।'

'मगर आपने उसके मान पर करारी चोट दी थी, जिसे वह सहन न कर सकी—आज भी भूली नहीं है और शायद

कभी भले भी नहीं। उसके स्वभाव से आप परिचित हैं। आग है—आग !'

'यह तो उसकी जबर्दस्ती है।'

'जो भी हो, परन्तु वह आपको कभी माफ़ न करेगी। और, शायद इसी आन में उसने राज से शादी भी कर ली। वह राज को कभी वैसा चाहती न थी, मगर जब सेज एक हो गई तो शायद दिल भी एक हो जाए।'

'यह अच्छा तमाशा खड़ा हो गया !'

'बिल्कुल बेतुका। इसे उसे बुरा लेना ही नहीं चाहिए था, मगर वह अपने स्वभाव की बाँदी ठहरी। फिर रात-दिन आपके खिलाफ़ वह राज के कान भरती रहती है। वह भी आपसे दूर हो गया। पत्नी पहले है—मित्र पीछे।'

'यह तो बहुत बुरा हुआ।'

'छोड़िए, इन बातों में माथा-पच्ची करने से अब कोई फ़ायदा नहीं। समय सभी घाव को भर देता है। आपके लिए भी दूसरा कोई चारा न था।'

अजीत कुछ देर के लिए बड़ा गम्भीर हो गया। जाने कितने विचार मन में आए और चले गए। जीवन में कुछ भी असम्भव नहीं। जब राज ऐसा मित्र दूर हो सकता है तो कोई क्या करे—क्या कहे ?

'क्या सोच रहे हैं आप? बड़े चिन्तित दिखते हैं।'—माला ने फिर छेड़ा।

'कुछ नहीं······यों ही······बेसिर-पैर की···'

'आखिर सुनूँ भी!'

'यही कि लता के लिए मुझे कोई परवा नहीं, मगर राज मेरे बचपन का मित्र रहा। अभिन्न सहचर भी। उसपर मुझे बड़ा भरोसा था। वह जब बदल गया तो अब कोई भी बदल सकता है। मनुष्य पर से मेरा विश्वास उठता जा रहा है। वही राज जो छुट्टियों बाद मेरे आने पर गले से लिपट जाता और दो-चार दिन अपने घर रखे बग़ैर मुझे होस्टल न जाने देता, उसी की ऐसी हरकत! मैं तो सन्न हूँ। आदमी इतना बदल सकता है! हे भगवान्!! उफ़!!!'

'आप बहुत बेचैन दिख रहे हैं। आखिर इतनी बेचैनी क्यों? संसार परिवर्तनशील है। नित बदलना, नित बनना, नित बिगड़ना—यह सब नित्य का खेल है।'

'बात सही है माला! मगर तुमको वे पंक्तियाँ याद हैं—तुम्हीं ने तो एक बार गाया था—'

'कौन-सी?'

'वही—मुझको इसका डर नहीं कि बदल गया ज़माना,
मेरी ज़िन्दगी है तुमसे, कहीं तुम बदल न जाना।'

माला ज़ोर से हंस पड़ी। हँसती रही—पेट के बल हँसती रही। कमरे की दीवार, दीवार में टँगे चित्र, यानी सब कुछ हँसते रहे—हँसते रहे। और, अजीत चुप —गुमसुम— सोचता हुआ—'इतनी हँसी की तो कोई बात नहीं, फिर···!'

✣

'आज बहुत दिनों पर माँ याद आई लता ! क्या ससुराल जाते ही माँ को भूल गई ? सास के लिए इतना प्रेम जग गया ? लोग ठीक ही कहते हैं—बेटी पराई होती है ।'—लता के आते ही माताजी ने ताना मारा ।

'ना माँ, ना ! इधर लोगों के आने का ऐसा सिलसिला लगा रहा कि कहीं बाहर जाने को समय ही नहीं मिला । आज ही बड़ी मुश्किल से समय निकाल कर भाग आई यहाँ ।······फिर इनके क्लब में जाना—इनके मित्रों से मिलना—यह भी एक तमाशा खड़ा रहता है ।'—लता ने अपनी व्यस्तता प्रकट की । फिर राज की ओर मुड़कर बोली—'देखिए, कहती न थी कि माँ अकेली है, नाराज़ हो रही होगी—एक मिनट के लिए भी ले चलिए । मगर, आपको खुशगप्पियाँ लड़ाने से फुर्सत कहाँ !'

'माताजी ! लता की नहीं, मेरी ही ग़लती है । हाँ,

इधर हम बहुत व्यस्त रहे। मगर अब भीड़ खत्म हो गई।' अब आने-जाने का सिलसिला ठीक से चल सकेगा। हाँ, माला कहाँ है? कहीं दिखती नहीं?'

'घर में बैठकर 'होम टास्क' कर रही है। कालिज की पढ़ाई—किताबों का अम्बार लग गया है।'

'अरे, उसका नाम लिखा गया?'

दोनों आश्चर्यचकित हो एकबारगी कह उठे—

'हाँ।'

'मगर तुम कहती थी कि अब इसकी पढ़ाई का भार मुझसे न उठेगा। फिर·········?

'हाँ, क्या करती, उस दिन अजीत आया और उसका नाम लिखा गया। अच्छा ही हुआ, अकेले घर बैठने से।'

अजीत का नाम सुनते ही लता जल-भुन उठी। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। खीस में बुत। चट माला के पास पहुँची और एकबारगी उबल पड़ी—'क्यों माला, मुझे सिर्फ चिढ़ाने के लिए अजीत से हिली-मिली रहती हो? क्या बनारस में मैं न थी कि अजीत को बुलाकर अपना नाम लिखवा लिया? क्या मैं मर गई थी? क्या तुम्हारे जीजाजी यह नगरी छोड़ कहीं दूर जा बसे थे कि तुमने अजीत से सहायता की भीख माँगी? इतनी गिर गई हो तुम? तुम्हारे

जीजाजी के एक इशारे पर पूरी युनिवर्सिटी में तहलका मच जाता है। फिर इनको न बुलाकर अजीत से मदद ली? मुझे बड़ा दुःख हुआ यह सब सुनकर। छीः—छीः!'

राज कुर्सी पर चुप बैठा है और लता बरसती चली जा रही है। माला को काटो तो खून नहीं। दीदी के मुँह से ऐसी खरी-खोटी सुनने को वह तैयार न थी। आखिर दीदी को आज क्या हो गया है! पागल तो न हो गई वह! माताजी भी चौके में बैठी इन बातों को सुन रही हैं और अवाक् हैं।

'दीदी, तुम इतना तूल क्यों कर रही हो? अजीत बाबू तो अनायास ही मिलने आए। घर पर कोई था नहीं, हमलोगों ने उन्हें ऑफिस में नाम लिखाने को भेज दिया। बस, इतनी छोटी-सी बात को तुमने इतना बड़ा बना दिया—तिल को ताड़ कर रही हो—।'

'तुम बुद्धू हो माला! अनाड़ी, नासमझ। फिर मेरी भावनाओं से तुम परिचित हो। भगवान के लिए तुम उसे शह मत दो।'

माला चुप है।

'मैं अजीत को खूब पहचानती हूँ। वह जितना ही कम यहाँ आए उतना ही अच्छा। मैंने तो उसे कभी नहीं सराहा। तुम्हीं ने उसे आसमान पर चढ़ा दिया।'

माला गुमसुम।

'माला! वह मेरा बचपन का साथी है। जितना मैं उसको जानता हूँ उतना कोई और नहीं जानता। उसकी जितनी ही कम यहाँ रसाई हो, उतना ही अच्छा। ऐसे आदमी को घर में न आने दिया करो। मैं तो उसे अब ज़रा भी 'लिफ्ट' नहीं देता। उस दिन वह मेरे यहाँ भी आया था, मगर मैंने उससे भरमुँह बात तक न की। कुछ देर बैठा रहा, फिर मेरा रुख़ देखकर चलता बना। मैंने उसे लता से भी मिलने न दिया। उसे 'लिफ्ट' देने से फ़ायदा?'—राज भी कैंची चलाता रहा—चलाता रहा। जिधर से चाहता, कतर देता—बेपरवाह—बेलौस।

इधर माला सोच रही है—कितना बदल गया इन्सान! यही राज बाबू हैं, जिनकी रसाई हमारे घर में अजीत बाबू के ही बलते हुई—रात-दिन उन्हीं की तारीफ़ करते नहीं अघाते थे—वही आज उन्हें नीचा दिखाने को कुछ भी उठा नहीं रखते। और, यही दीदी, जो उनसे शादी तक करने को लालायित थीं, आज उनसे दुश्मनी ठाने बैठी हैं। यह कहाँ का न्याय है—यह कैसी संस्कृति! मनुष्य इतना भी गिर सकता है! जो घर का एक अभिन्न अंग बन गया था, वही आज आगन्तुक बन गया है! आह! हे भगवान्!

माँ अपने नए दामाद के लिए नाश्ता-चाय बना लाई। माला ने राज बाबू को चट चाय बनाकर थमाया; फिर दीदी को भी दिया। अब लता ने दूसरी बौछार बगल में बैठी माँ पर की—'माँ! तुम तो मेरे विचारों से अवगत हो। तुम्हें अजीत को मेरी खातिर भी तो सर पर नहीं चढ़ाना चाहता रहा!'

'बेटी! तुम्हें ग़लतफ़हमी हो गई है। हमदोनों ने कोई ऐसी बात न की जिससे तुम्हें चोट पहुँचे। वह तो सिर्फ़ 'ऐडमिशन' के समय आया और हमें बिना माँगे सहायता देने लगा। हमने उससे कभी कुछ न माँगा और न कभी कुछ चाहा।'

'माताजी! अब से अजीत जब आए तो उसे दूर से ही प्रणाम कर विदा कर दिया करें। हमलोगों से दूर रहने को मैं भी उससे साफ़-साफ़ कह दूँगा। आज न तो कल उससे भेंट होगी ही।'—राज ने कहा।

'जैसी तुम्हारी मर्ज़ी बेटा!'—माताजी ने उसे शान्त करने की ग़रज़ से कहा और बातों का सिलसिला बदलने का प्रयास करती हुई बोलीं—'कहो बेटा! हमारी समधिन तो प्रसन्न हैं न! हम ग़रीब लोग उनकी कुछ सेवा न कर सके—आखिर हमारी हस्ती ही कितनी—मगर, हमारी लता तो उनकी कोई भी सेवा करने से हिचकेगी नहीं।'

'माताजी, आपने भी खूब कहा ! लता ऐसी सुघर पतोहू पाकर कौन सास खुश न होगी ! माँ बहुत प्रसन्न हैं—गद्‌गद् । उनको कोई शिकायत नहीं । अपनी तलहथी पर अपनी पतोहू को रात-दिन लिए रहती हैं ।'

इतने 'हेवी-डोज' से तो कहीं जाकर लता का मूड कुछ बदला वर्ना पानी में आग लगाने और लौ पर लौ उगलने से वह बाज़ न आती ।

'माँ, माताजी बहुत खुश रहा करती हैं । आखिर खानदान और संस्कृति भी तो कोई चीज़ है । उनकी नज़रों में अमीरी-ग़रीबी किसी रिश्ते के बाँटने की लकीर नहीं बन सकती । जैसी वह धन की धनी हैं, वैसी ही हृदय की भी बड़ी हैं ।'—लता ने उनकी तारीफ़ की झड़ी लगा दी ।

माँ मन-ही-मन प्रसन्न है क्योंकि बेटी सुखी है—प्रसन्न है । उसने लता के भाग्य को सराहा—भगवान का धन्य मनाया । भगवान सबको ऐसी ही किस्मत दे—माला को भी को भी ऐसा ही वर दे ।

रात का भी खाना-पीना समाप्त कर जब लता और राज अपने घर चले गए तब माला शान्त और संयत हो अपने पलंग पर बत्ती बुझाकर लेट गई । खिड़की से आता फिर-फिर समीर

उसके अंग-अंग को सहलाता रहा और पूर्णिमा की झाँकती हुई चाँदनी ने उसे अपनी गोद में समेट लिया।

माला अर्द्धचेतन अवस्था में पड़ी है और इस निशीथ में उसका अकेला साथी—वही उसका चिरपरिचित मन—कहे जा रहा है अपनी कहानी—बेरोक, बेलौस·······: —आखिर उसकी ज़िन्दगी ने भी कैसी करवट ली—कैसे धारा पलट गई! जिस घनी छाँव तले वह एक क्षण विश्राम करती—शीतलता अनुभव करती, वह भी छिनी जा रही है—मिटी जा रही है। उसका वह नीड़—सालों-साल पत्तियों-टहनियों को चोंच से ला-लाकर सजाया-सँवारा हुआ वह घोंसला—आँधी के एक झोंके में उड़ा जा रहा है—विलीन होता जा रहा है इस विशाल अम्बर में—अनन्त शून्य में, और वह भींगती-कलपती एक ठूँठ पर बैठी इस महानाश की विभीषिका को—इस अकाल-मृत्यु के नर्त्तन को एकटक देखे जा रही है—अनासक्त, असम्बद्ध—शरीर से अभी-अभी बिछुड़ी हुई आत्मा की तरह—हाँ-हाँ, उसी की तरह।

❖

'प्रिय अजीत बाबू,

कल रात एक बड़ी भयानक कल्पना में डूबी पलंग पर पड़ी-पड़ी करवटें बदलती रही। उफ़! कैसी दर्दनाक थी वह रात—कितनी विचित्र थी वह कल्पना जो मानव-मन की पकड़ के परे रही—सूक्ष्म, अदृश्य!... शरीर से अभी-अभी बिछुड़ी हुई जीवात्मा की क्या-क्या गति, क्या-क्या मति होती होगी! जिस शरीर से इतना प्यार, इतना मोह रहा, वही अब मृतावस्था में बेलौस, बेखबर ज़मीन पर पड़ा है—और वह जीवात्मा फिर जीवित होने की अभिलाषा में बार-बार उसमें घुसती, बार-बार उसे जगाने की कोशिश करती है, मगर वह तो निर्जीव पड़ा है—निष्प्राण! फिर लोग उसे उठाकर ले जाते और जलाकर खाक़ कर डालते हैं और वह जीवात्मा रोती-बिलखती यह दृश्य देखती रह जाती है—उसके जीवन के संगी-साथी भी उसके शोक को बाँट नहीं पाते, क्योंकि

वह आज अकेली है—बेसहारा, मौन, एकाकी। एक अपरिचित देश का वासी—एक नए संसार का अजनवी। मैं घबड़ा उठती। तड़प-तड़प कर उठ बैठती। कभी बत्ती जला देती—आँखें फाड़-फाड़ कर दीवारों पर टँगे चित्रों को देखती, अपने अस्तित्व की ओर एक नजर दौड़ाती, फिर लेट जाती। कैसी बुरी थी वह रात! कितनी विकट—कितनी भयानक!……

खैर, छोड़िए इस कल्पना को। आपके रेशमी जीवन में ऐसी मनहूस कल्पना को स्थान ही कहाँ! उमंगों और उम्मीदों में बसी अपनी रात को आप मेरी इस बेतुकी बात से तबाह न करें।

उस दिन दीदी आई थीं। राज बाबू भी। वे लोग मुझे खूब जली-कटी सुना गए। आपके लिए ताने तो मुझे ही सुनने पड़ते हैं—जैसे मैं ही आपकी सब-कुछ हूँ। वे आपके नाम से जल-भुन उठते हैं। उनकी जरा भी राय नहीं कि आप हमारे घर की पौर पर भी क़दम रखें। आपकी चाल में उन्हें एक साजिश—एक छलछन्द की बू मिलती है। कैसी थोथी बात—कैसी विडम्बना! परन्तु क्या कीजिएगा—'जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरति देखी तिन तैसी'—। मगर मुझे तो ऐसा लगा, मेरी दुनिया—मेरा सारा संसार ही लुटा जा रहा है और मैं दूर खड़ी-खड़ी अपनी मौत का नजारा देखे जा रही हूँ—बस,

देखे जा रही हूँ। उस पंछी की क्या बिसात जिसका नीड़ ही उजड़ रहा हो—उस नारी का क्या अस्तित्व जिसकी छाँव ही मिट रही हो !

हाँ, इधर किरण बहन का कोई हाल न मिला। वह कैसी हैं ? कहाँ हैं ? आपके साथ नौकरी पर या घर पर ? कृपया जल्द सूचित करेंगे। उनका भी इधर कोई पत्र नहीं आया। जी लगा है।

मेरी पढ़ाई शायद छूट जाय। मुझे 'फ्रीशिप' नहीं मिली। पैरवी की इस दुनिया में नित नए-नए पैरवीकार कहाँ से ढूँढ़ लाऊँ ! आप अपने प्रोफेसर से आकर मिलेंगे नहीं ? एक बार कोशिश करने में कोई हर्ज तो न होगा। दीदी और जीजाजी मुझसे कटे-कटे-से रहते हैं। उनका गुस्सा अभी शान्त नहीं हुआ है।

आपकी—

माला'

अजीत किरण को लेने घर आया है। यह चिट्ठी घूमते-घामते उसे घर पर ही मिली। किरण से मिलने पास-पड़ोस की औरतें आई हैं। पहले-पहल घर की नई बहू अपने पति के साथ नौकरी पर जा रही है इसलिए सभी उससे मिलने—उसे विदा करने को आती हैं। किरण को साज-शृंगार -कर

उनके बीच बैठना पड़ता है—हर एक से दो-चार बातें करनी पड़ती हैं। कभी हँसना—कभी कुछ 'सीरियस' भी हो जाना पड़ता है। मुख की मुद्राएँ न बदली जाएँ तो लोकाचार कैसे निभे !······

मध्यरात्रि के उपरान्त वह अपने शयनकक्ष में आती है। पसीने से तर। साड़ी का आँचल छाती से उतारकर पलंग पर फैला देती है और जूड़े का जूही का हार कुर्सी पर फेंक कर लेट जाती है—उफ़ ! चार दिनों से विदा देनेवालों का जो ताँता बँधा है वह आजतक खत्म न हुआ। जी ऊब गया है। इस उमस में टीशू की भारी साड़ी पहनकर बैठना एक कवायद है पूरा। पसीने की बूँदें गहरे पाउडर की परत को भेदकर ऊपर उभर आई हैं। होठों की कृत्रिम ललाई भी सिमट-सी गई है—पसीने के प्रभाव से शायद। 'डबल बेड' के दूसरे तकिए पर मर रखे अजीत माला का पत्र पड़ रहा है। उसे खोलकर किरण ने सहेजकर अपने तकिए तले रख दिया था।

'यह पत्र कब आया ?'

'कल सुबह। पता नहीं आपके ऑफिस से घूमता हुआ यहाँ कैसे पहुँच गया।'

'वहाँ से मेरे रवाना होने के बाद वहाँ पहुँचा होगा।'

'तो अब क्या किया जाय ? माला को फ्रीशिप तो न मिली ।'

'हाँ, यह बड़ा बुरा हुआ । मुझे तो प्रोफेसर साहब ने आश्वासन दिया था, फिर जाने कैसे·······।'

'आजकल किसी की बात का भरोसा नहीं ।'

'हाँ ।'

'मगर इसका कोई उपाय आपको करना ही पड़ेगा । एक दिन के लिए चले न जाइए—फिर पैरवी कर आइए ।'

'अब पैरवी करने से कुछ न होगा । समय बहुत निकल गया । पूरी सूची सुना दी गई होगी ।'

'फिर ?'

'यही तो सोच रहा हूँ—कोई रास्ता तो निकालना ही होगा । नहीं तो वह मुफ्त में मारी जाएगी ।'

'उफ़् ! बड़ी उमस है—आप खिड़कियों को जकड़कर क्यों सोए हैं ?'—वह उठकर खिड़की खोल देती है । फिर-फिर समीर कमरे में फैल जाता है ।

कुछ देर में ठंडाकर वह उठ बैठी । अर्द्धनग्न हो साड़ी बदलकर हल्की सूती साड़ी पहन फिर पलंग पर आ गई और अजीत के पार्श्व में छिपी-छिपी पूछ बैठी—'तो हमारी नई गिरस्ती का पूरा प्रबन्ध हो गया ?'

'वह तो गृहिणी के जाने के बाद ही होगा !'

'तो इतने दिनों से क्या कर रहे थे ?'

'क्वार्टर लिया, पानी-बिजली का इन्तज़ाम किया, पलंग-फर्नीचर का प्रबन्ध किया, एक नौकर रखा, नौकरानी रखी·······।'

'यहाँ से माँ जी ने खाना बनाने तथा खाने का पूरा सामान पैक कर रखवा दिया है। हाँ, चूल्हा कैसा है ?'

'पत्थरकोयले का चूल्हा है —बड़ा सुन्दर बना है। धुआँ एकदम नहीं आता। वहाँ फैक्टरी का कोयला हमें मुफ्त मिलता है।'

'चलिए, यह तो अच्छा ही हुआ। लकड़ी के चूल्हे पर बड़ी आफ़त होती। उस चूल्हे पर तो मैं चट खाना तैयार कर दूँगी—आपके ऑफिस जाते-जाते, आपके ऑफिस से आते-आते।'

'वाह ! यहाँ तो बड़ी तेज़ी दिखा रही हो तुम, मगर वहाँ काम सर पर पड़ेगा तो छक्के छूट जाएँगे। अभी तो माँ के हाथों बने-बनाए पकवान नित नए-नए चाभने को मिलते हैं—वहाँ तो बस, अपने घोलो, अपने खाओ।'

'हाथ कंगन को आरसी क्या ! परसों से मेरे हाथों का

करिश्मा आप देख लेंगे। नित नए-नए पकवान आपको भी खिलाऊँगी।'

अजीत ज़ोर से हँस पड़ा। वह भी हँस पड़ी।

अजीत सो रहा है। थका-माँदा था, पलक मारते नींद आ गई। किरण प्रफुल्लित है—मगन है अपनी नई गिरस्ती की कल्पना में। अपना एक घर होगा—अपना एक 'किचन'—जिसे घेरकर उसकी सारी गिरस्ती खड़ी हो जाएगी। स्टोर में अच्छे अँचार, पापड़, तिलौरी, अदौरी और रोज़मर्रे के चावल अलग—कभी-कभी दावतों के दिन पोलाव बनाने को पीलीभीत के लम्बे-लम्बे पतले-पतले चावल अलग। गोल मूँग तथा बनारसी चने के दाल।……और रंगीन पैकेट में पीसे हुए मसाले। पेंटरी में चमचमाते बर्त्तन एक क़रीने से सजे रहेंगे और छः आदमी के खाने के लिए डिनर-सेट तथा चाय की प्यालियाँ भी सजी रहेंगी। 'बेड-रूम' तो सजा-सजाया गुड़िया का घर होगा। सभी वस्तुएँ लाल—टेस लाल। लाल कालीन, लाल-लाल पलंग, उसपर लाल-लाल पलंगपोश। पर्दे भी लाल और कमरे का 'डिसटेम्पर' भी कुछ लाली लिए हुए ही! जित देखो तित लाल!—किरण अपनी नई गिरस्ती की कल्पना से नाच उठी, इठला पड़ी। उसके सपनों की

रंगीनियों ने उसकी पलकों से नींद छीन ली और वह मीठी कल्पनाओं पर एक बारगी ज़ोर से खिलखिला उठी।

कि अजीत की आँखें इस आहट पर खुल पड़ीं और उसने कहा—'सोओ भी। रात कितनी गिर गई! सुबह से ही पैकिंग करना है। समय कम है। एक ही दिन छुट्टी और रह गई है।

आज माला लता की सास निमन्त्रण पर उसके यहाँ प्रीतिभोज में शरीक होने आई है। शहर भर की संभ्रान्त महिलाएँ प्रीतिभोज में निमन्त्रित हैं। काफी चहल-पहल है। अमीरों की दुनिया, पैसे की कोई कमी नहीं। साज-शृङ्गार की एक शानदार नुमाइश। हर एक की अपनी अलग विशेषता रही। परन्तु माला तो अपनी सुफेद सादी साड़ी में ही आई है। उसे देखकर लता की सास ने टोका भी—'ऐसी सादी साड़ी क्यों? लता ने भी ख्याल नहीं किया। उसके पास बीसियों एक-से-एक साड़ियाँ हैं। उन्हीं में से एक तुम्हें भी पहना देती—।'

'माताजी! पार्टी की भीड़ में इस ओर मेरा ख्याल ही न गया। मेरी शादी में ही इसे अच्छी-अच्छी कितनी साड़ियाँ मिली थीं, मगर यह तो 'जोगन' बनी रहती है—मैं क्या करूँ?'

'ना बेटी, ना। अब शादी की उम्र हुई तेरी। आज नहीं तो कल तू किसी का घर बसाएगी। पहिराव—साज-शृङ्गार पर पूरा ध्यान दिया कर। नहीं तो सब फूहड़ कहेंगे।'

माला ने लता की सास की बात को हँसकर टाल दिया। ये बातें उसे बुरी तो जरूर लगीं, मगर इस हंगामे में बात बढ़ाना उसने अच्छा न समझा।

जब पूरी मजलिस हवेली में जम गई तो लता ने माला के कान में कहा—'कुछ बजाकर सुना दो। मैंने तुम्हारा सितार भी मँगा लिया है। खाने में अभी देर है। सभी बाग़-बाग़ हो जाएँगी। तुम्हारी उँगलियों के जादू से अभी ये सब अपरिचित हैं।'

'इतनी बड़ी भीड़ में मुझे बजाने का अभ्यास नहीं—मैं तो स्वान्तः सुखाय बजा लेती हूँ·······।' वह लजा रही है।

'लजाती क्यों हो? जो भी बजाओगी, इन्हें अच्छा ही लगेगा। ये सिर्फ गहना-कपड़ा पहनना जानती हैं। सितार के गत से इनका क्या सम्बन्ध! पहले गत·······फिर एकाध भजन भी·······।'

'ऐलो! फिर तुम बात बढ़ाने लगी। ना-ना, एक गत बजा दूँगी —बस।'

'पागल न बनो। बड़ी बहन के ससुराल में उसकी लाज

रख लो। तुम्हारे जैसा गला यहाँ किसी ने नहीं पाया है। गाकर देखो तो सही—समाँ बँध जाएगा।'

दीदी ने बात ही ऐसी कह दी कि माला अब एतराज न कर सकी।……फिर तो उसने सारी मजलिस को सचमुच बाग-बाग कर दिया। अपने गायन और वादन से ऐसा सुर-संसार खड़ा कर दिया कि सभी महिलाएँ अपनी भूख भूल घण्टों झूमती रहीं—उसे सराहती रहीं। माताजी भी उसकी प्रशंसा करती नहीं थकतीं। आज के प्रीतिभोज में उसने अपने संगीत से जान डाल दी। मध्यरात्रि के उपरान्त जब माला जाने को तैयार हुई तो लता ने कहा—'मैंने माँ के यहाँ सोने को एक महरी भेज दी है। अब बहुत देर हो गई। आज रात यहीं सो लो। कल सुबह दोनों साथ ही माँ के यहाँ चलेंगे।'

माला मन मसोस कर रात में वहीं सो गई। उसका पलंग लता की सास की बगल में ही पड़ा। उसने माला को कई बार छेड़ा—'अब अगले साल तुम्हारा भी विवाह हो जाना चाहिए। मैं वर ढूँढ़ रही हूँ। समधिन को सब खबर कर दूँगी।' मगर माला बार-बार 'ना' कहती—'अभी मुझे बहुत पढ़ना है। अभी जल्दी क्या है? पीछे देखा जाएगा।'

'माला बिटिया ! उम्र ज्यादा हो जाने पर फिर सुन्दर वर न मिलेगा ।'

'तो और अच्छा ! फिर शादी न होगी ।'

'धत् ! कैसी पगली-जैसी बातें करती हो ? अभी लड़कपन नहीं गया तुम्हारा ।'

सुबह नहा-धोकर दोनों बहनें अपनी माँ के यहाँ पहुँचीं । उन्हें देखते ही माँ ने कहा—'कहो, कल रात तो खूब गाना-बजाना रहा । महरी मुझे सब बता रही थी ।'

'हाँ माँ, माला ने तो कमाल कर दिया । ऐसा समाँ खड़ा कर दिया कि सभी चकित रह गए । कितनी माला को अपने घर की बहू बनाने को तरसने लगीं । मेरी सास तो पीछे पड़ गईं । इसके लिए वर ढूँढ़ने को लालायित हो गई हैं ।'

अपनी बेटी की प्रशंसा सुनकर माँजी बहुत प्रसन्न हैं । बहुत देर तक कल रात की पार्टी का हाल उनसे सुनती रहीं । फिर माला घर की झाड़-बुहार में लग गई और देर तक जागने के कारण लता माला के पलंग पर थकी लेट गई और मैगजीन के पन्ने उलटने-पुलटने लगी । माँजी को तो चौके या स्कूल से फुर्सत ही कहाँ कि कोई दूसरा काम करें !

कुछ देर बाद खीस में घुत लता चौके में चली आई और एकबारगी बरसने लगी—'माँ, माला ने हमें बर्बाद कर दिया ।'

मुझे विश्वास न था कि यह इतनी गिर गई है। घर की इज्ज़त मिट्टी में मिला दी इसने। इसके सर पर कौन भूत सवार है—मैं नहीं समझ पाती। आखिर इसे हो क्या गया है? ज़रा भी ऊँच-नीच नहीं समझती। हमारी बात तो एकदम नहीं मानती। इतनी ज़िद्दी—इतनी बुद्धू मैं इसे नहीं समझती थी। यह बाहर से कुछ है, अन्दर से कुछ। न कुछ साफ़-साफ़ कहती है और न कुछ साफ़-साफ़ करती है। एकदम बेहया हो गई है।'—क्रोध से लता के होंठ काँप रहे हैं। आँखों से अंगारे बरस रहे हैं। चौके में आवाज़ सुनकर माला भी कोने में आकर खड़ी हो गई है—शान्त, निश्चल।

'अरे, बात क्या है—कुछ मैं भी तो सुनूँ! अभी तो दोनों बहनों में घुल-मिलकर बातें हो रही थीं, यह क्षणभर में क्या से क्या हो गया?'

'हुआ क्या? सब कुछ हो गया। देख, अपनी दुलारी बेटी की काली करतूत! अजीत के यहाँ से फ़ीस के पैसे मनीआर्डर से मँगाए जाते हैं। यह साजिश, और मुझे कुछ पता नहीं? देख, अजीत के मनीआर्डर की अधकट्टी। सभी बातें साफ़-साफ़ लिखी हैं। इसी की किताब में पड़ी थी। पता नहीं, कितने मनीआर्डर आ गए। आवारा, शोहदा! हमारा घर बर्बाद कर रहा है।'—लता तमक कर वहीं मोढ़े पर बैठ गई।

माला चुप है, मूर्त्ति की तरह अटल।

माँ बिलखने लगी—'यह क्या किया माला! मेरे मुँह में कालिख पोत दी। मैं ग़रीब हूँ, इसीलिए दूसरे के सामने हाथ पसार दिया? यह ज़िल्लत—इतनी शोख़ी! और वह तुमसे इस पैसे की क़ीमत माँगेगा बेटी, क़ीमत! कोई भी पुरुष नवयौवना पर तरस खाकर पैसे नहीं फेंकता। इस दान के अन्दर उसका दानव बोलता रहता है। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ—किधर जाऊँ? मेरी आँखों से दूर हट कलमुँही! तूने मुझे कहीं का न रखा। छीः-छीः, बेशर्म!'

माँ छाती पीटने लगी।

लता बरसती रही—'अजीत मुझे कभी न भाया। तुम दोनों ने ही उसे इस हद तक चढ़ा दिया। अब वह हमारा घर बर्बाद कर रहा है। उसे घर में आने न दो माँ! आवारा, लम्पट! माला से उसका कोई भी सम्बन्ध न रहे।'

अब माला भी फट पड़ी। उसकी बर्दाश्त का बाँध टूट गया—'माँ, अजीत बाबू एक दिन हमारे परिवार के सबसे बड़े हितकारी मित्र थे—यहाँ तक कि तुम उन्हें अपना दामाद बनाने की भी लालसा पालने लगी, दीदी उन्हें अपना पति बनाने के सपने देखने लगी, मगर जब वह सपना साकार न हुआ तो वह हमारे दुश्मन, आवारा, लम्पट, लुच्चा, लफंगा सब कुछ

बन गए ! यह कहाँ की नीति है, कैसा न्याय है—कौन-सा व्यवहार है ?······वह हमारे घर में अपने परिवार के जैसे थे। तुम्हें आवश्यकता पड़ती तो तुम उनसे पैसे माँग लेती और उन्हें जब आवश्यकता होती तो तुमसे माँग लेते—इतनी आत्मीयता, ऐसी अभिन्नता कि हम सब एक हो गए। अब उसी अभिन्नता—उसी आत्मीयता की कड़ी को यदि मैं जुगाए-निभाए चली जा रही हूँ—एक संयत, एक पवित्र तरीक़े से—तो मैं कलंकिनी, कलमुँही, बदचलन—जाने क्या-क्या न हो गई ! हाय री मतलबी दुनिया और हाय री मतलब की यारी ! फिर वाह री ईश्वरी लीला और वाह री क़ुदरती माया ! ····मेरा तो माथा घूम गया—आदमी ऐसा स्वार्थी होता है, इतना बदल जाता है ?'

माँ बिलखकर शान्त हो गई है।

लता भी घायल हो छटपटा रही है। कोई उत्तर न सूझा तो दूसरा रास्ता पकड़ लिया—'माँ, इन दलीलों पर समय न बर्बाद करो। इसी जाड़े में माला की शादी कर दो। यह अपने घर चली जाय, वही अच्छा। पैसे की तुम चिन्ता न करो। एक-से-एक अच्छे वर मिलेंगे, बिना दहेज के। इसका भार अब तुमसे न चलेगा—बड़ा महँगा पड़ेगा।'

'दीदी ! विवाह तो मैं करूँगी नहीं—चाहे कुछ भी हो

जाय। अभी तो मुझे पढ़ना है—बाद की बात बाद में देखी जाएगी।'—माला की आवाज़ में एक अजीब दृढ़ता है।

'देखा माँ, बात कहाँ तक बढ़ गई है! इसे चिल्लाने दो। हमें जल्द ही कुछ रस्म करा देना होगा। मैं अपनी सास से आज ही बातें चलाती हूँ। उनके कई एक अच्छे-खासे रिश्तेदार हैं।'

माला झमक कर चली गई तो माँ ने कहा—'हाँ-हाँ, इसकी शादी जल्द ही कर दी जाय। शुभस्य शीघ्रम्। नहीं तो······।'

ऑफिस से लौटने के बाद अजीत को राज का एक तार मिला—'जल्द मुझसे मिलने आओ। एक आवश्यक काम आ पड़ा है।'

अजीत ने तार किरण को दिखाया। माथापच्ची की—आखिर कौन-सा जरूरी काम आ पड़ा है कि तार देकर बुलाया जा रहा है? किसी निष्कर्ष पर दोनो पहुंच नहीं पा रहे थे। अन्त में अजीत ने भोर की गाड़ी से काशी जाना तय कर लिया। राज से मिलने के उपरान्त ही सब कुछ ठीक-ठीक पता लग पाएगा।

रास्ते में अजीत सोचता रहा—राज से मेरा अब वह पुराना स्नेह-सम्बन्ध न रहा। उसके मन में मेरे प्रति कटुता लता ने जगा दी है। इस परिस्थिति में यदि वह कुछ उल्टा-सीधा बकने लगा तो बड़ा बुरा होगा। कटुता और बढ़ेगी ही।...तो क्यों न वह लौट जाय—पत्र द्वारा सारी बातें पूछ

ले······परन्तु अब इतनी दूर आकर लौटना क्या अच्छा होगा ? छोड़ो—जो होगा सो होगा—इसी उधेड़-बुन में पड़ा अजीत राज के घर पहुंचा।

बाहर उसका पुराना नौकर शिवटहल तम्बाकू बना रहा है। अजीत को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और बोला—'बहुत दिनों के बाद आए भइया! क्या पढ़ना छोड़ दिया ?'

'हाँ भई, अब नौकरी कर रहा हूँ। सारी दुनिया ही बदल गई। कहो, राज भैया हैं ?'

'हां-हां, बैठिए। मैं उन्हें अभी खबर किए देता हूँ।'—कहता वह अन्दर चला गया।

कुछ क्षणों बाद राज खुद बाहर आया और अजीत से बड़े तपाक से हाथ मिलाते हुए कुशल-क्षेम पूछा।

'हाँ, सभी अच्छे हैं—प्रसन्न हैं। कहो, तुम्हारी कैसी कट रही है ?'

'खूब मजे की। गुलछर्रे ही गुलछर्रे हैं। चलो, अन्दर ड्राइंग-रूम में बैठें। वहीं बातें होंगी।'

अजीत ने पाया, राज का रुख कुछ बदला-बदला-सा है। अन्दर जो आग सुलग रही हो, परन्तु ऊपर से शान्त ही नजर आता है।

दोनों ड्राइंग-रूम में बैठे इधर-उधर के गप्प लड़ाते रहे।

कॉलेज के पुराने दिनों की चर्चा छिड़ी है। वातावरण सुन्दर ही है। कोई कटुता नहीं, कोई वैमनस्य नहीं। फिर चाय और नाश्ते की तश्तरियाँ आईं और उनके साथ-ही-साथ बनी-ठनी लता भी आई। एक ही क्षण में अजीत भाँप गया—लता अब वह पुरानी लता नहीं। एक तो पहले की ही तीती—दूसरे अब नीमचढ़ी। उसने नमस्ते करते हुए पूछा—'कहिए, भाभी कैसी हैं?'

'अच्छी ही हैं।'

'आपने एक बार भी उन्हें मिलाया नहीं।'

उसी लहजे में अजीत ने चट कहा—'आपने एक बार भी उन्हें बुलाया नहीं।'

'ओ! सारा दोष हमारे ही सर रहा? लीजिए, मैं स्वीकार कर लेती हूँ।' तीनों हँस पड़े।

जी बहलाने को लता कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करती रही, फिर नाश्ता समाप्त होते ही उसने बात की धारा बदल दी—'अजीत बाबू! यह दुनिया सदा तफ़रीह की वस्तु नहीं—यह तो आप भी मानते होंगे। और, यदि शादी-शुदा आदमी किसी अनब्याही भोली लड़की से तफ़रीह करे तो यह कितना बड़ा पाप होगा—इसे आप भी समझते होंगे।'

'मैं आपका मतलब नहीं समझ सका।'

'आप सब समझ रहे हैं अजीत बाबू ! मुझे भुलावे में न रखें। मैं माला नहीं हूँ।'—लता ने तुरन्त तेवर बदल दिया।

अजीत ने भी अपने अन्दर की सारी शक्ति समेट कर जवाब दिया—'लताजी ! मैं सचमुच आपका अभिप्राय नहीं समझ रहा हूँ। तोड़-मरोड़ कर जिस ढंग से आप बातें कर रही हैं उसे कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति बर्दाश्त नहीं कर सकता। आप बेसिर-पैर की बेतुकी बातें कर रही हैं। आपकी धारणाओं का सचाई से कोई सम्बन्ध नहीं है।'

लता भी खार खा गई—'आप मुझे जवाब से दबाने की कोशिश न करें अजीत बाबू ! अपनी कमजोरियों को बातों के आडम्बर में छिपाने का प्रयास निष्फल होगा। आपने माला से जो सम्बन्ध बना रखा है या जो बनाने की नीयत और कोशिश रखते हैं, वह सम्मानजनक नहीं है। माला एक गरीब माँ की बिना बाप की भोली बेटी है। उसे तीन-पाँच कुछ भी मालूम नहीं। कृपा कर उसे बर्बाद न करें। भगवान के लिए उसे बख्श दें।'—आखिरी वाक्य कहते-कहते उसकी आवाज़ में जाने कैसे एक नम्रता, एक कोमलता आ गई।

अजीत शान्त है, निश्चल। उसने कोई सरगर्मी न दिखाई और न सफाई देने की ही कोई नई चेष्टा की। लता उसे तनिक

भी विचलित न कर सकी। वह मुस्कुराते हुए कहता गया—'लताजी! गलतफ़हमियों के लिए मैं क्या करूँ? मैं तो बस यही कह सकता हूँ कि आपके परिवार से, माला से, आप सभी से जो आत्मीयता, जो मित्रता, जो प्रेम मुझे दान-स्वरूप मिला है, उसी का एक तुच्छ प्रतिदान मैं एक ढंग से देने की चेष्टा किया करता हूँ—और कुछ नहीं। हाँ, इसमें यदि कोई कटुता, कोई अभद्रता आ गई तो···तो यह कमी मेरी ही होगी—कुछ आप सज्जनों की नहीं, मेरी बदक़िस्मती समझिए····।'

अजीत की इस दर्दभरी बात पर वातावरण में एक गम्भीरता छा गई। लता कुछ सकपका गई। राज भी अजीत का रुख देखकर चुप हो गया। सभी कुछ देर चुप रहे। किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था कि अब क्या कहें—कैसे कहें!

···आखिर राज ने कहा—'भाई अजीत! लता को तो तुम जानते ही हो—आग नहीं तो पानी। आज से नहीं, कॉलेज के दिनों से ही तुम जानते हो। इसकी बातों का बुरा न लेना। बात यह है कि हम चाहते हैं कि माला की शादी अब कर दी जाय। जवान बेटी अकेले घर में रखना ठीक नहीं। माताजी भी बूढ़ी हुईं। उनका भी अब कौन ठिकाना! उनकी ज़िन्दगी में ही उसकी भी शादी हो जाय—अपने घर

चली जाय खुशी-खुशी—यही सभी चाहते हैं। और, शायद तुम भी यही चाहते होगे...।' आखिरी वाक्य कहकर राज और लता दोनों बड़े गौर से उसे देखने लगे।

'ज़रूर। इससे सुन्दर प्रबन्ध और क्या हो सकता है! माला की शादी हो जाय, वह खुश रहे, सुखी रहे—यही तो उसके सभी शुभचिन्तकों का प्रयास चाहिए।'—अजीत ने उसी लहजे में कहा।

राज और लता बड़ी देर तक उसे आश्चर्यचकित हो देखते रह गए।

'भई, तुमको तार देकर इसलिए अभी बुलाया कि माला के सर पर एक अजीब खब्ती सवार है। वह शादी के नाम से ही बिगड़ जाती है। क्या तुम उसे समझा-बुझाकर राज़ी कर सकते हो? ज़ोर-ज़बर्दस्ती करना उचित नहीं। कृपया हमारी सहायता करो। तुम भी माला को उतना ही जानते हो जितना हम जानते हैं।'—राज ने बड़ी आज़िज़ी से कहा।

'हाँ, मैं उससे अवश्य मिलूँगा और उसे राज़ी करने की पूरी कोशिश करूँगा। विवाह उसे अवश्य करना चाहिए। यदि वह पढ़ने को बहुत इच्छुक है तो शादी के बाद भी पढ़ाई-लिखाई चल सकती है।'

'हाँ, भला इसमें किसी को क्या एतराज होगा !'

अजीत इतनी शान्ति और सहूलियत से बात करेगा—इसकी उम्मीद राज और लता को न थी। लता कुछ शर्माई भी कि वह नाहक ही अजीत पर एकबारगी यों गरम हो गई। राज को भी लता का यह रवैया अच्छा न लगा। अजीत का रुख जानकर उसे अपना रुख बदलना था। परन्तु अजीत ने बड़ी बुद्धिमानी दिखाई। बात का बतंगड़ होने से बचा लिया।

राज से विदा ले अजीत सीधे माला के घर पहुँचा। माताजी स्कूल गई हैं। माला अकेली किताबों में डूबी अपने कमरे में बन्द है। अजीत को अनायास ही आते देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी। झट आँचल समेटती खड़ी हो गई और बोली—'वाह ! आज दिन में चाँद कैसे उग आया ! क्या धरती की धुरी बदल गई ? कोई खबर नहीं, कोई चर्चा नहीं—यों आज कैसे अनायास आना हुआ आपका ?······हाँ, भोर का सपना, भोर का तारा नहीं जो झट आँखों से ओझल हो जाए। वह तो सत्य का एक स्वरूप है और सदा सत्य ही होता है। और, आज तो सचमुच सत्य ही निकला। मैं आज आपको अपनी आँखों में लिए ही उठी थी—देखिए, आप आ ही गए !·· हाँ, जीजी भी आई हैं क्या ?'

'नहीं तो !'

'हाँ, उन्हें आप क्यों लाइएगा ?'

'यों ही चला आया। ठीक से प्रोग्राम बनता तो वह जरूर आतीं।'

'मगर यह मुँह क्यों लटका है ? जरूर किसी से झड़प हो गई है—कुलियों से या ताँगेवाले से ?'

'धत् !···हाँ, मैं तो भूल ही रहा था। 'साइकॉलॉजी' ले रखी है तुमने—मानव-मन का अध्ययन भी तो करना ठहरा। बस, आज मुझ पर ही प्रयोग हो जाय !'

दोनों खिलखिला पड़े।

अजीत कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करता रहा। आज माला को इतना प्रसन्न देखकर उसका जी न चाहता था कि बेतुकी बातें छेड़कर रंग में भंग डाले। मगर करता क्या ? दुपहरी की गाड़ी से लौट जाना है—आजभर की ही छुट्टी ठहरी। फिर जिस मिशन पर वह बुलाया गया है, उसे तो पूरा करना ही है। उसने डरते-सहमते छेड़ा—'माला ! एक जरूरी काम से आज मुझे यहाँ आना पड़ा। तुम्हारी दीदी का तार गया था·········।'

माला का माथा ठनका—वह ताड़ गई।

'ओ ! तो इस पाप के आप भी भागीदार होना चाहते

हैं ?'—उसने तेवर बदलते हुए कहा ।

'क्या मज़ाक कर रही हो ? पाप कैसा ?'

'तो इसे पुण्य ही कहिए । लीजिए, काशी में सभी पुण्य कमाने आते हैं । आप भी शायद इसीलिए आए हैं ।'

'देखो, बात समझो । नाहक नाराज़ होने से बात बनता नहीं ।'

'तो आप बिगड़ी हुई बात को बनाना चाहते हैं ? मुझ पर रहम कीजिए अजीत बाबू—रहम । मैं आपसे दया की भीख माँगती हूँ—दया की । मुझे क्षमा करें—मुझे बख्श दें । मैं जहाँ हूँ, जैसी हूँ—खुश हूँ, सन्तुष्ट हूँ । क्या मेरी खुशी आपकी खुशी न होगी ? क्या मैं आपकी कोई नहीं ? क्या आपसे एक सहारा—एक सहायता माँगने का भी मेरा हक़ नहीं ? अगर आपको मेरे लिए कुछ भी ख्याल है तो हाथ जोड़ती हूँ, आप मुझे ऐसी राय न दें ।'

अजीत ने देखा—माला एकाएक बहुत भावुक हो गई । उसके चेहरे की मुद्रा अचानक बदल गई ।

'मैं तुम्हें····तुम्हारी बातों को समझ नहीं रहा हूँ माला ! आख़िर तुम क्यों ऐसा····?'

'अजीत बाबू ! अब मुझे समझने की कोशिश न करें—न करें । उससे न आपके हाथ कुछ आएगा, न मेरे ।···पर

भगवान के लिए पत्थर न बनिए। यदि मेरे भगवान नहीं बन सकते तो इन्सान तो बने रहिए। वही सही।' वह फफक-फफक कर रोने लगी।

अजीत चुप है—किंकर्त्तव्यविमूढ़।

'आँसू पोंछो माला! क्या लड़कपन कर रही हो!···· तुम्हारे जीजाजी तथा दीदी तुम्हारी भलाई के लिए ही यह सब सोच रहे हैं। फिर····।'

अजीत ने देखा—उसकी आँखों के आँसू सूख चले और वह उन्मादिनी-सी एक अजब आवेश में फुफकार उठी—'अजीत बाबू! आप···हो-हाँ, आप···मेरे विवाह का प्रस्ताव लेकर आए हैं?···हाँ-हाँ, आप····उफ़····आप····मेरी मृत्यु का प्रस्ताव —मेरे सर्वनाश का प्रस्ताव···अरे, आप····? यह दिन देखने के पहले मैं मर क्यों न गई? आप पागल तो नहीं हो गए—पागल!—आपके मुँह से ऐसी·······हाँ,······आपके·······? हे भगवान्! धरती फट जाती और मैं समा जाती—इस क्रूर संसार से राहत मिलती।···· आप···अजीत बाबू···हाँ-हाँ,···· आप···आपके मुख से ऐसी बात? ओह! उफ़!!—मैं कहाँ भाग जाऊँ?—कहाँ समा जाऊँ?'—वह तकिए में सर छुपाकर सुबक-सुबक कर रोने लगी।

अजीत सचमुच पागल-सा हो गया। यह दृश्य किसी के

लिए असह्य है। वह पागल की तरह उठा और स्टेशन की ओर लपका। कभी किसी से टकरा जाता—कभी किसी गाड़ी के नीचे आते-आते बच जाता। उसे खुद पता नहीं वह कब और कैसे अपने घर लौट आया। वह बीमार-सा हो गया है। किरण जब पूछती—'अब तबीयत कैसी है?'—तो कहता—'रह-रहकर सर फटा जा रहा है। जाने कितनी कोडोपायरिन की गोलियाँ खा गया मगर कोई असर नहीं। उफ़! कितना दर्दनाक दृश्य था वह!'

'कौन-सा···?'

वह चुप है। किरण समझती—रेल से कोई कट गया होगा—वही भयानक दृश्य देखकर ये विचलित हो गए हैं।

'प्रिय माला,

मैं आज भी बीमार हूँ। किसी काम में जी नहीं लगता। सोचता हूँ, दूर—बहुत दूर—कहीं अकेला चला जाऊँ जहाँ किसी मानव से—उसकी छाया से भी भेंट न हो। मगर शायद वहाँ भी मुझे राहत न मिले—शान्ति न मिले। जीवन में कभी-कभी अनजाने ही बड़ी भूल हो जाती है जिसका कोई निदान नहीं—निकास का कोई रास्ता नहीं। तब हम समझते हैं कि अपने को सर्वशक्तिमान् समझनेवाला मानव कितना शक्तिहीन है—कितना छोटा! उस दिन तुम्हें ऐसी दयनीय अवस्था में छोड़कर मैं कैसे यहाँ चला आया—यह आज भी एक पहेली है—पहेली।····तुम्हारा रूप नहीं, स्वरूप देखा था उस दिन। घायल हरिणी की तरह छटपटा रही थी तुम। उफ़, किस मर्माहत अवस्था में थी तुम! परन्तु मैं····हाँ-हाँ····मैं····एकटक तुम्हारी व्यथा को—तुम्हारी पीड़ा को देख रहा था—एक निस्सहाय व्यक्ति की तरह। तुम

शायद निदान चाहती थी, परन्तु मैं निदान न था—और आज तो तुम्हारी पीड़ा-व्यथा का अजस्र स्रोत ही हो गया हूँ।

यह कैसा विडम्बना! मैं तुम्हें सुख न दे सका—न सही, यह पीड़ा—यह व्यथा तो न देता! परन्तु यह क्या, सारी अशान्ति का मूल कारण आज मैं ही हूँ।······परन्तु माला! एक बात कह दूँ···बुरा न लेना·······उस दिन से तुमसे कुछ कहने में भी मुझे डर लगता है। एक भूल का निदान दूसरी भूल नहीं है।·······फिर ज़िन्दगी का सफ़र बहुत लम्बा है। भावनाओं की मौज पर ज़िन्दगी की नौका अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाती। यदि भावनाओं-विचारों पर ही कोई जी पाता तो इस अभागे पेट की बड़ी दुर्दशा होती। कोई इसे पूछता ही नहीं।·······फिर तुम एक नारी हो···नारी—तुम्हें एक नीड़ चाहिए—एक सहारा—एक प्रेमी। कहीं दुनिया यह न समझे कि अजीत और माला की आत्मीयता में शरीर की लिप्सा है—एक भूख। हम सफाई देना नहीं चाहते। परन्तु संसार शायद हमसे सफाई चाहता है—और उसकी माँग के औचित्यपर कोई तकरार नहीं। उसका हक़ ही है सरासर। अब आगे तुम सोचो। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं।····

तुम्हारा—
अजीत'

भागते किनारे

कॉलेज से लौटने पर माला को अजीत का पत्र मिला। उदास-सी रहती है वह। उन्मन-अशान्त। पत्र देखते ही क्षण-भर को उसके चेहरे पर हँसी नाच गई। तुरत खोला। उम्मीद थी, एक सहारा—एक संकेत—मिलेगा उसे। मगर हाय राम! —'है चिता की राख कर में माँगती सिन्दूर दुनिया!' और, अजीत बाबू भी उसी दुनिया के एक व्यक्ति हैं, उससे परे नहीं —उससे दूर नहीं। उफ़, अजीत बाबू! आपसे यह उम्मीद न थी। एक विश्वास बँध गया था कि आप अग्निपरीक्षा के लिए मुझे बाध्य नहीं करेंगे। परन्तु अजीत बाबू, आप भी ·······हाँ-हाँ, आप भी मेरी परीक्षा लेना ही चाहते हैं— मेरी! सीता की अग्निपरीक्षा ने राम को शायद सन्तोष नहीं दिया। उसे दुबारे जंगल की राह लेनी पड़ी। आश्रम का जीवन अंगीकार करना पड़ा। फिर लवकुश का जन्म हुआ। आप कहते हैं कि संसार यह न समझे कि माला ऐसी है—अजीत बाबू वैसे हैं। बस, इसीलिए मैं आग में कूद जाऊँ!

यह कैसा न्याय अजीत बाबू? यह कौन-सी दलील? हाँ, राम ने सीता को आग में खड़ा कर दिया। आप भी तो पुरुष हैं—राम की ही कड़ी की एक···।

···तो माला आग में खड़ी कर दी जाय। यदि भस्म

हो गई तो उसके तेज में खोट है और सोने की तरह निखर कर निकल आई तो पवित्र है—पवित्र ! ······आप भी यही न चाहते हैं—यही न ? तनिक भी दया न करेंगे—परीक्षा चाहते हैं ? इस जाँच की यातना से नजात न देंगे क्योंकि सफाई चाहते हैं—एक गवाही भी ? खूब ! खूब !!

वह हँसती रही—हँसती रही ।

३

दीवारों के भी कान होते हैं। वे गुप्त से गुप्त बातें सुन लेती हैं और सदियों बोलती रहती हैं। फतेहपुर सिकरी के महलों की दीवारें आज भी जाने कितनी कहानियाँ सुनाती रहती हैं—कितनी दिलकश, कैसी बेजोड़! कोई कान देकर, क्षण भर समय देकर उनकी अटपटी वाणी समझने की ज़रा कोशिश तो करे, जाने कितने-कितने सनसनीखेज रहस्य उद्घाटित हो जाएँगे। परन्तु……उस सुसज्जित सुवासित शयनकक्ष की दीवारें जिनके घेरे में माला अरुणाकुमार के साथ अपने पावन-परिणय की प्रथम रात्रि बिता रही है—केवल इतना ही सुन सकीं—'यदि मैं आपसे क्षमा भी पा सकती हूँ तो आप मुझे क्षमा कर देंगे। आपकी नज़रों में यदि यह एक बड़ा अपराध है तो अपराध ही सही परन्तु मैं……मैं……।'

दीवारों ने पूरा प्रयास किया कि कुछ और पंक्तियाँ सुन

पड़े—कुछ और भी ऊपर या नीचे की कड़ियाँ पकड़ में आ पाएँ, मगर सारी कोशिशें बेकार रहीं—व्यर्थ। बस, उन्होंने आँखें फाड़-फाड़कर इतना ही देखा—जैसे बिजली की 'करेन्ट' लग गई हो, अरुण अपने अंक में घिरी उस नववधू को सुसज्जित पलंग पर अकेली छोड़ एक झटके से कूद कर दूर जा खड़ा हुआ और कमरे की सारी खिड़कियाँ खोल ज़ोर-ज़ोर से साँस लेकर ठण्डी हवा में अपनी घुटन मिटाने लगा। माला घायल हरिणी की तरह पलंग पर पड़ी-पड़ी रातभर छटपटाती रही और अरुण सारी बत्तियों को बुझाकर खिड़की के पास बैठा-बैठा उस तारों से भरे अन्धेरे आकाश को निहारता रहा—कुछ ढूँढ़ता रहा—याद करता रहा अपनी प्यारी विभा को जिसकी आवाज़ें अन्तरिक्ष में आज भी गूँजती रहती हैं—काँपती रहती हैं—'मेरे ही लिए सही, तुम शादी ज़रूर कर लेना—ज़रूर कर लेना।' क्या इसी दिन के लिए?···हाँ-हाँ, इसी दिन के लिए !!

—कि रात बीत गई।

अरुण आँख. मलते कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और अँगड़ाई लेते शीशे के सामने खड़ा हो बाल ठीक करने लगा। शीशे पर नज़र पड़ते ही वह चौंक पड़ा। उसे जान पड़ा कि उसकी उम्र अनायास दस साल बढ़ गई है। रात भर में क्या से

क्या हो गया ! रात और प्रात में इतना अन्तर—इतना भेद ! उषा के आगमन के साथ ज़िन्दगी ने एक नई करवट ली—भविष्य ने एक नया पन्ना उलटा ।

उधर माला पलंग पर बेसुध पड़ी है, बेख़बर । उसे गहरी नींद आ गई है—कब और कैसे, वही जाने ।

पुरुष और नारी—नारी और पुरुष—विधि के हाथों गढ़ी दो अप्रतिम प्रतिमाएँ, एक ही प्रतिमा में जड़ी आँखों की दो पुतलियाँ, एक ही तने की दो डालियाँ, एक ही डाली की दो टहनियाँ—बाहर से दो, अन्तर में एक; परन्तु फिर भी दोनों में कितना अन्तर—कितना दुराव ! एक धरती, दूसरा आसमान । एक मोम, दूसरा वज्र । एक सब-कुछ सह कर भी चुप, दूसरा एक छूट पर तूफ़ान उठाने को तैयार । एक छाती तले अंगार को भी तुषार-सदृश छिपाकर रखे मुँह से 'सी' न करती, हँसती-बोलती बेलौस चली जाती है और दूसरा—उफ़, दूसरा—कोई भी समझौता करने को तैयार नहीं—कोई भी शर्त उसे मंजूर नहीं—कोई भी अपराध क्षम्य नहीं । किरण ने पहली रात अजीत की पहली बात की जो कुछ भी कहानी जानी-सुनी उसे अनजानी-अनसुनी की तरह तह में डाल दिया और अजीत के साथ वह पूरी आत्मीयता

के साथ रह रही है मगर अरुण.........! कुछ भी भूल न सका, भुला न सका।

'उठो! उठो माला! काफ़ी दिन चढ़ आया। आज ही इलाहाबाद चल देना है।'

माला धड़फड़ाकर उठ बैठी। आँचल सम्भालती बोली—'आपने कहा था परसों चलेंगे।' आज ही चले जाने से घर-वाले क्या कहेंगे? भैया और जीजी नाराज़ होंगे। मैं नई बहू जो ठहरी! कल आई और...आज ही...।'

'दो दिन यहाँ बर्बाद करने से फायदा? कल ही 'ज्वायन' कर लूँगा तो दो दिन के 'कैजुअल लीव' बच जाएँगे।

'जैसी आपकी मर्ज़ी—।' माला चुप हो गई।

स्टेशन पर माला को छोड़ने सभी आए। उसकी नई जीजी, भैया, जीजाजी, दीदी और अजीत भी।

माला की छाती के अन्दर का घाव अन्दर-ही-अन्दर जो टीसे, बाहर चेहरे पर कोई भी भाव-रेखा उभर-बिखर नहीं रही है। वह अपने डब्बे में लाल कपड़े की गठरी बनाकर रख दी गई है। अरुण बाहर प्लेटफार्म पर अपने घर के तथा ससुराल के रिश्तेदारों से मिलने में व्यस्त है। फिर दीदी और जीजाजी माला के पास आकर बेंच पर बैठ गए।

भागते किनारे

'देखो तो, दुल्हिन के रूप में माला कितनी अच्छी लग रही है !'—दीदी ने कहा।

'हाँ, तुमसे तो कहीं अच्छी लगती है !'—जीजाजी ने व्यंग्य किया।

'हटो, तुम्हें तो हर वक्त मजाक ही सूझता है।……… माला ! इतनी चुप-चुप-सी क्यों हो ? नई शादी, नया दुल्हा; नई उमंग, नया उछाह……… '

माला कुछ अजीब-सी करने लगी। दीदी और जीजाजी को लगा—नई-नई दुल्हिन बनी है, कुछ घबड़ा-सी गई है।

'माला ! तुम सदा प्रसन्न रहा करो। प्रसन्न रहना भी एक कला है। समझी ?'—राज ने गाड़ी से उतरते-उतरते कहा।

गाड़ी ने सीटी दी, सभी से विदा ली और चल पड़ी। माला की आँखें अनायास ही चंचल हो उठीं—किसी को खोजने लगीं, फिर उसी पर क्षणभर को अटक गईं। अजीत ने शादी के बाद आज पहली बार देखा कि उसकी आँखों में संसार की सारी व्यथा, सारी करुणा आकर सिमट गई है। उफ़ ! उसका जी जाने कैसा करने लगा। गाड़ी के साथ-ही-साथ सभी बढ़ने लगे। अजीत की बग़ल में राज है। उसके कन्धे थप-थपाते हुए उसने कहा – 'अजीत ! तुम्हारे एहसान को मैं कभी न भूलूँगा। तुमने माला को बचा लिया।'

अजीत कुछ उत्तर न दे सका। उसका गला भरा है, मन भरा है, तन भरा है। मगर···आँखें सूखी हैं—सूनी हैं।

गाड़ी हवे पर उड़ी चली जा रही है। अरुण अखबार के पन्ने उलट रहा है। माला अपने जीवन के पिछले पन्ने उलट रही है···उलटती चली जा रही है—

माँ की आँखों में जैसे बाढ़ आ गई है। रात-दिन रोती-कलपती रहती है। दीदी-जीजाजी के ताने छाती को छलनी किए देते हैं और अजीत का आदर्शवादी जीवन उसके जीवन को नया मोड़ लेने को बाध्य कर रहा है। साथ-ही-साथ शतरंज के खिलाड़ी विधाता की भी बन आती है—दीदी की सास की गोटी लाल हो जाती है और उनके विधुर रिश्तेदार श्री अरुणचन्द्र उसके भावी पति चुन लिए जाते हैं। इस चुनाव में चाहे-अनचाहे सभी ने मुहर मार दी।

श्री अरुण चन्द्र इलाहाबाद में सरकारी अफसर हैं। उम्र यही बत्तीस के लगभग होगी। पहली पत्नी से कोई सन्तान न थी। घर में सिर्फ भाई और भाभी हैं। बड़ी पियरी मुहल्ले में घर की पुरानी हवेली है। भाई घर का कारबार देखते हैं। नया घर बसाने तथा सन्तान की लालसा से श्री अरुणचन्द्र ने बड़े हौसले से दूसरी शादी की है। शादी के उपरान्त उनके मित्रों

ने उन्हे बड़ी बधाइयाँ दीं और जीवन के इस नए अध्याय की गौरव-वृद्धि के लिए कितनों के शुभकामनाओं के तार भी आए। चलते समय भाभी ने माला के शृङ्गार-बक्स में इन तारों को रख दिया और कहा—'इलाहाबाद पहुंचकर इन्हें धन्यवाद-ज्ञापन का उत्तर जरूर दे देना।'

परिवर्त्तन ही संसार का नियम है और आशा इस परिवर्त्तन के वातावरण में एक जान, एक प्राण भरती रहती है। इलाहाबाद आने के उपरान्त अरुण ने सोचा कि जीवन का नया अध्याय शायद दोनों के लिए श्रेयस्कर हो। बाढ़ का पानी या ज्वार की लहरें जब निकल जाती हैं तो पुण्य-सलिला जाह्नवी शान्त हो स्थिर गति से बहने लगती है।

इलाहाबाद सिविल लाइन्स में अरुणचन्द्र का एक छोटा-सा ख़ुशनुमा बंगला है—सजा-सजाया और रंग-रोशनी से भर-पूर। आज इस घर की मालकिन बनकर माला इलाहाबाद पहुँची है। नया घर, नया वातावरण, नए लोग-बाग। अरुणचन्द्र के नौकर मातादीन और चपरासी शिवमंगल ने नई मालकिन को आकर सलाम किया। 'किचेन' में क्या कमी-बेशी है उसकी भी लिस्ट हुई और जो नया डबल-बेड बना

था उसे शो-रूम से मँगाकर शयनकक्ष में फिट कराया गया।

'माला! आज मेरे 'बॉस' मि० भल्ला के यहाँ पार्टी है। यहाँ हमारे पहुँचने की सूचना पाते ही उन्होंने फोन से हमें आमन्त्रित कर दिया है। शादी की पार्टी ठहरी, ऑफिस के बहुत लोग आएँगे। ज़रा खूब बन-ठनकर...।'—अरुण ने हँसते हुए आँखें मटका दीं। माला ने मुस्कुरा दिया।

मातादीन की बीवी पन्ना ने अपने पति के साथ 'किचेन' में भिड़कर अपनी नई मालकिन के लिए बड़े अच्छे-अच्छे पकवान बनाए हैं। मेज पर जब वे खा रहे थे तो वह झाँक-झाँक कर देख जाती कि मालकिन कौन-कौन पकवान मन से खा रही हैं। खाना खत्म होते ही वह मालकिन की थाली भी देख गई कि उन्हें खाना रुचा या नहीं। माला ने बहुत कम ही खाया—हालाँ कि अरुण की राय रही कि वह भी उतना ही खाए जितना वह खा रहा है। जो चीज़ वह नहीं लेती उसे वह जबर्दस्ती उसकी थाली में रख देता।

सन्ध्या समय बहुत जल्द ही तैयार हो अरुण लॉन में आकर बैठ गया। माला किवाड़ बन्द कर अपना शृङ्गार कर रही है। अमीरों की मजलिस में दुल्हिन बनकर जाने का यह पहला मौक़ा है। कौन साड़ी पहने, कौन नहीं! दीदी ने तो सारी शिक्षा दे दी थी—सन्ध्या की पार्टी में यह 'कलर', रात

के लिए दूसरा 'कलर' और सुबह में कुछ और। इधर अरुण की राय कि वह दुल्हिन बनकर चले। फिर उसने लाल टेस बनारसी साड़ी निकाल ली और गहनों से अपने को गूँथ लिया। अरुण ने बहुत हल्ला मचाया तो पाजेब भी पहन ली और खूब बन-ठन कर बाहर चली आई। अरुण ने उसे निहारा, हँस पड़ा—'हाँ, खूब बनी हो! मिसेज भल्ला अब तुम्हें जरूर पसन्द करेंगी। चलो, देर हो रही है। गाड़ी लगी है।'

गाड़ी में सवार होते ही उसे धक्-से लगा—माला! ····हाँ-हाँ, माला! तुम ठीक उसी तरह लग रही हो जैसे किसी दूकान में निर्जीव मॉडल को खूब सुन्दर साड़ी-ब्लाउज पहनाकर शो-केस में रख दिया गया हो।—'स्टेचू' सदृश। कोई भाव नहीं, कोई उतार-चढ़ाव नहीं···यह क्या!····नहीं-नहीं।····

गाड़ी भल्ला साहब की पोर्टिको में पहुंच गई। मिसेज भल्ला बड़े प्रेम से दोनों को उतार कर 'मेन टेबुल' पर ले गईं। पार्टी में ऑफिस के सभी बड़े-छोटे अफसर पधारे हैं। शहर के कितने नामीगरामी रईस भी हैं। पुरुषों से स्त्रियों की संख्या ज्यादा है। मिस्टर और मिसेज भल्ला दुल्हा-दुल्हिन को हर मेज पर ले गए और मेहमानों से परिचय कराया। माला इस 'फॉरमैलिटी' में डूबी जा रही है। भारी लकदक साज-

श्रृङ्गार, नए-नए अजनबी लोग, 'खुश रहो'—'तुम्हारा सुहाग अचल रहे' का तुमुल स्वर, 'नमस्ते'—'प्रणाम'—'सलाम' के नए-नए तौर-तरीक़े ! उफ़ ! माला परीशान है। इन सारी बातों में उसे कोई दिलचस्पी नहीं। फिर भी दिल रमाना है—मन मनाना है।

मि० भल्ला ने अपनी बेटी माया को दुलारकर कहा—'दुल्हिन बहुत थक गई। माया ! पंखा चलाकर इसे ड्राइंग-रूम में बिठाओ। मैं मेहमानों को विदा कर अभी आती हूँ।'

माला को राहत मिली। इस कवायद से जान बची।

मिसेज़ भल्ला के ड्राइंग-रूम में आवाज़ें छन-छनकर चली आती हैं—'अमाँ अरुण ! बीवी तो बड़ी अच्छी पाई है ! लाख में एक ! मुबारक हो !'

'हाँ भाई, अच्छा 'सेलेक्शन' है। मगर हो तुम बड़े तगड़े मंगला—कहीं पहली जैसी इसे भी खो मत देना।'

'तुम हो बुद्धू ! आज शुभ दिन को क्या अनाप-शनाप बकते हो ? हमलोगों ने मंगली ही लड़की इस बार चुनी है !'

'क्या खोने के लिए ही इसे पाया है ? यह भी अच्छी रही। आशीर्वाद दो कि.......।'

'अवश्य, अवश्य !'

'कहो माला ! आज पार्टी कैसी रही ?'—घर लौटने पर अरुणचन्द्र ने पूछा।

'बड़ी अच्छी रही। सभी लोग बड़े प्रेम से मुझसे मिले। मिसेज़ भल्ला तथा उनकी बेटी माया तो सबमें बड़ी अच्छी लगीं। सारे परिवार का मिज़ाज बड़ा अच्छा है।'

'हाँ, तुम्हें यहाँ बड़ी अच्छी 'कम्पनी' मिलेगी। जब जी घबड़ाए अकेले-अकेले, तो माया को बुला लेना या उन्हीं के घर चली जाना। फिर अगल-बगल अफ़सरों की बीवियाँ भी रहती हैं। उनके यहाँ भी आने-जाने का सिलसिला रहेगा।'

'हाँ, यहाँ 'कम्पनी' अच्छी रहेगी—यही मेरा भी ख्याल है। फिर जहाँ आप है, वहाँ मन न लगने का सवाल ही नहीं उठता। जब आप दौरे पर चले जाएँगे या ऑफ़िस में बहुत देर लगा देंगे तभी जी घबड़ाएगा और कम्पनी की खोज होगी। नहीं तो अपनी ही कम्पनी कौन कमज़ोर है ? घर में पन्ना भी कम दिलचस्प औरत नहीं है। मुझे तो बड़ी भली लगती है वह। आज दिनभर में ही मुझे बड़ी आत्मीयता हो आई उससे। बराबर हँसती रहती है—हंसाती रहती है।'

माला हँसने लगी। अरुण की बाछें खिल आईं। शादी के बाद आज पहली बार माला की बातें सुनकर वह हर्षोल्लास से थिरकने लगा।

'माला ! तुम्हें पाकर मैं सब-कुछ पा गया। मुझे नई ज़िन्दगी मिली, नया संसार मिला। समझो कि 'लाइफ़' में 'सेट्ल' करने के बाद आज पहली बार मुझे एक घर मिला—एक परिवार मिला—एक आशा मिली।' भाव-विह्वल हो उसने माला की कोमल उँगलियों को अपने हाथों में ले लिया। वे सर्द थीं—बेजान, मगर उसके लहू की गर्मी ने उनमें भी कुछ जान डाल दी।

'पिछले दिनों को हम भूल जाएँ माला ! अतीत हमारा बड़ा विषम रहा है। भूत को भूलकर वर्त्तमान और भविष्य को बनाना ही बुद्धिमत्ता है।

'जो बीत गई सो बात गई, जो चला गया सो चला गया···
तुम पूछो टूटे तारों से कब अम्बर शोक मनाता है !'

क्या सचमुच 'जो बीत गई सो बात गई ?'···सचमुच ? ···नहीं-नहीं, वही तो मेरी निधि है—जीवन की प्रेरक शक्ति ! यदि वही मिट जाए तो जीवन में क्या रस मिलेगा ! यदि उसकी याद खो दूँ तो किसके लिए जीऊँ, किसके लिए हँसूँ ? —अरुण के अंक में घिरी माला 'डबल बेड' पर पड़ी-पड़ी सर चीरती जा रही है कि अरुण पूछ बैठता है—'तुम्हारे अधरों पर कोई स्फुरण नहीं—निस्पन्द-निष्प्राण, आँखों में

खामोशी—डरावनी खामोशी, शरीर में बर्फ की सर्दी—यह सब क्या माला ? क्यों माला ?'

अरुण की आँखों में सुर्खी है। वे खुल-खुलकर बन्द हो जाती हैं। माला हँस देती है—यदि रोशनी रहती तो अरुण उसके चेहरे का व्यंग्य परखकर उसे पलंग से दूर फेंक देता, किन्तु अन्धकार कभी-कभी जीवन के कितने पापों को ढँक लेता है। आज माला को भी उसने बचा लिया—छिपा लिया। यदि यह पाप है तो पाप ही सही। अभिशाप है तो अभिशाप ही सही।

✣

माला अपने पतिदेव के लिए नाश्ता बना रही है। अरुण ने कहा कि उसके हाथ की छनी पूरियाँ बड़ी मुलायम होती हैं तो माला ने ज़िद पकड़ ली कि आज नाश्ता वही बनाएगी।

'यह क्या तमाशा खड़ा कर रखा है तुमने ? इतनी पूरियाँ कौन खाएगा ? चलो, एक साथ बैठकर खाएँ।'

'नहीं, आप मेज पर बैठिए। मैं गरम-गरम छान कर पन्ना से भेजती जाऊँगी। आपको देर हो जाएगी। मैं फिर खा लूँगी। मातादीन, शिवमंगल तथा पन्ना सभी को दो-चार पूरियाँ आज नाश्ते में दूँगी।'

'जैसी आपकी मर्ज़ी।'

अरुण मेज पर है—गरम-गरम पूरियाँ सब्जी के साथ खा रहा है और सुघर गृहिणी पाने का सुख भोग रहा है। उधर माला पूरियाँ छान रही है—चुप, गुमसुम।

'आजकल मालकिन बड़ी गुमसुम रहती हैं। मालूम होता है, माँ का घर बहुत याद आ रहा है····।' पन्ना ने पूछा।

'हाँ री पन्ना! रहती हूँ—रहती हूँ, कभी जी एकदम उचट जाता है—किसी काम में मन नहीं लगता। लाख जी रमाने की कोशिश करती हूँ, मगर कुछ करने को जी नहीं करता।'

'जब मैं भी पहली बार आई थी शादी के बाद तो मेरी भी कुछ-कुछ यही हालत रही। इसीलिए पहली बार बेटी जल्द ही बुला ली जाती है। मैं तो दो-चार दिन बाद ही मैके चली गई थी।'

'तुम्हारी बात कुछ और रही होगी पन्ना! यहाँ तो —।'

'वाह, आप भी कैसी बातें करती हैं?'—वह ही-ही करके हँसने लगी।

माला चौके से आकर खाने की मेज पर बैठी है। अरुण नाश्ता खतम कर सिगरेट का कश ले रहा है। पूछता है—'आज चलोगी देवदास देखने? नया रील आया है उसका। किसी जमाने में यह अपने ढंग का अनोखा चित्र था।'

'देवदास!····!!' उसका कलेजा धक्-से कर गया। अरुण ने देखा, उसकी सूरत पर एक परीशानी—एक उदासी छा गई।

'………………….।'

'तो मँगाऊँ दो टिकट ? भल्ला-परिवार भी आज जा रहा है ।'

'अभी जल्दी क्या है ? शाम को तय किया जाएगा ।' उसने बात टाल दी । मन दौड़ गया त्रित्रा सिनेमा की पौर पर । एक रील तैयार हुआ उस दिन, जो नित नए-नए रील तैयार करती रही—करती गई और जिसकी समाप्ति………नहीं-नहीं 'इन्टरवल' आ गया है । समाप्ति या 'इन्टरवल'—'इन्टरवल' या समाप्ति—एक-दूसरे के पूरक, एक-दूसरे से भिन्न ।

पूरियाँ आईं—माला ने छूकर छोड़ दीं, चाय आई—माला ने ठण्डी का बहाना कर प्याली टरका दी । फल का 'डिश' आया, उसने यों ही टाल दिया । अरुण तमाशा देख रहा है, मगर कुछ कहता नहीं ।………

कि डाकिए ने पत्रों का अम्बार लाकर वहाँ रख दिया । अरुण हरेक लिफाफे को उलट-पुलटकर देखता है, फिर रख देता है ।

'माला ! तुम्हारी आज दो चिट्ठियाँ हैं । एक लिफाफे पर तो माताजी की लिखावट है और दूसरे पर शायद राज बाबू की………नहीं, पता नहीं किसकी ।'

'देखूँ—' उसके चेहरे की उदासी उड़ने लगी ।

'ओ ! यह तो अजीत बाबू की है। बड़े इन्त········· ऊँह···!' वह अपने को जब्त कर चुप हो गई, मगर चेहरे पर, अंग-अंग में उमंग दौड़ गई जो अरुण की निगाहों से भी छिप न सकी।

किसी भी अनायास सहज स्फुरण को कोई भी प्राणी छिपा नहीं सकता। यह उसके मान का नहीं।

अरुण मेज पर से उठा और 'ड्राइंग-रूम' में जाकर फाइलों में डूब गया। और, माला लिफाफा खोलकर झट अजीत का पत्र पढ़ने लगी।

'प्रिय माला !

बरातियों और सरातियों को विदा करने में मैं इतना मशगूल था कि तुम्हें तुम्हारे नए जीवन के लिए बधाई भी नहीं भेज सका। मेरी शुभकामनाएँ तुम्हारे साथ हैं। तुम्हारे पतिदेव से भी ठीक-ठीक भेंट नहीं हुई। बस, प्रणाम-पाती ही हो पाई। श्री अरुणचन्द्र मुझे एक संभ्रान्त सज्जन दीख पड़े। ऐसे सुन्दर और सज्जन पुरुष से सान्निध्य बहुत पुण्य करने पर ही मिलता है। माला ! सचमुच तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। मुझे आशा है—नहीं-नहीं, विश्वास है, तुमने नए जीवन को सहर्ष अंगीकार किया और बराबर सुखी रहोगी। भला

अरुण बाबू ऐसे सुशील पति के साथ कौन स्त्री सुखी न रहेगी !

माताजी बहुत प्रसन्न हैं। राज बाबू तथा लताजी भी। माताजी ने बाबा विश्वनाथ के यहाँ जाकर मिन्नतें उतारीं और दोनों दामादों के दीर्घ जीवन की प्रार्थना की। जब मैं उनसे विदा ले रहा था तो उनकी आँखों में खुशी के आँसू छलछला आए। मेरे दोनों हाथों को चूमते हुए उन्होंने कहा—'बेटा ! मुझे अब बड़ी शान्ति मिली। दोनों शादियाँ बाबा विश्वनाथ की कृपा से एक-से-एक अच्छी हो गईं। अब मैं सुख से मर सकूँगी। हाँ, तुम मेरी खोज-खबर बराबर लेते रहना। मैं तो अब अकेली ही ठहरी—तुम्हारे ही भरोसे रह पड़ी रहूँगी। दो-दो शादियों को निबटाकर मैं अब छूछी हो गई हूँ। घर में एक पैसा नहीं।' मैंने भी उन्हें पूरा आश्वासन दिया। उन्हें बड़ा सन्तोष, बड़ा सुख मिला। तुम्हारे चले जाने के बाद माँ का घर सूना-सूना-सा हो गया। हर ओर तुम्हारी आकृति नाचती रही—हर ओर तुम्हारी आवाज़ गूँजती रही। बेटी की ममता जो ठहरी ! तुमने अपना सितार क्यों छोड़ दिया ? कोई जाएगा उधर, तो माताजी भेज देंगी।

···अभी-अभी अखबारों में पढ़ा कि इलाहाबाद में 'देवदास' चल रहा है। यहीं से जी ललच रहा है देखने को।

तुम जरूर जाकर देखना। मेरा प्रिय खेल।···अरुण बाबू से मेरा नमस्ते कहना।

तुम्हारा—
अजीत'

माला का अंग-अंग नाचने लगा है। इलाहाबाद 'सिविल लाइन्स' के गद्यमय वातावरण में आज अजीत का पत्र एक उमंग एवं एक उल्लासमय काव्य अपने साथ लेता आया। पत्र लिए वह ड्राइंग रूम में पहुँची और अनजाने कहती गई—'लीजिए, आप भी पढ़ लीजिए। आपको भी नमस्ते आया है। मेरे लिए शुभकामनाएँ। चलिए, दो टिकट मँगाइए आज और देवदास देख आया जाय। बड़ा सुन्दर खेल है। मैं इसे कई बार देख चुकी हूँ। आखिर आज फिर···।' वह एक सुर में कहती गई, जाने क्या-क्या बोल गई।

'ओह! आज तो तुम्हारे पैर जमीन पर पड़ते ही नहीं। आखिर बात क्या है? पागलों की तरह—'

'नहीं-नहीं, अभी शिवमंगल को भेजकर दो टिकट मँगाइए। फिर सीट मिलना मुहाल हो जाएगा।'

'पगली! दो सीट का इन्तजाम तो मैं खुद कर लूँगा। तुम क्यों परीशान होती हो?'

माला पत्र लिए अपने कमरे में चली गई और बार-बार

पढ़ने लगी। बीच-बीच में हँसती जाती, खिलखिलाती रहती।

ऑफिस जाने के पहले अरुण जब अपने कमरे में आया टाई बाँधने और कोट पहनने तो माला उसके हाथों से टाई जबर्दस्ती छीनकर अपने हाथों उसका 'नॉट' बनाने लगी।

'ओह! बड़ी कृपा हो रही है मुझपर! आज सूरज पश्चिम में कैसे उगा?'—अरुण ने आँखें मटकाते हुए कहा।

'लीजिए, कोट पहनिए—सूरज बराबर पश्चिम में ही उगता है!'—माला ने आँखों को नचाते हुए कहा।

दोनों हँस पड़ते हैं। वह अरुण के अंक में अनायास ही चली आती है। फिर होंठों पर स्फीत चुम्बन, उनमें सुगबुगाहट—आँखों में नमी।

अरुण ने और भल्ला-परिवार ने देवदास देखा, खूब सराहा, यमुना-बरुआ की बड़ी चर्चा रही, मगर माला ने सब-कुछ देखकर भी कुछ न देखा। वह देखती रही—'देवदास' का अपना रील—'देवदास' का माला-एडिशन।—वह भीड़ ···वह उमस की गर्मी····उसका भूल जाना—फिर मिल जाना ···साइकिल की सवारी···माँ के आँसू···नीचे की दुकान की पकौड़ियाँ····चाट-चटनी···गंगा की गोद में झिरझिरी···वे दिन····वे रातें—सितार के तार से खेल···स्कूल और कॉलेज के··

दिन···सब घटनाएँ एक-एक कर, एक कतार में—देवदास के नए रील की तरह भागती चली जातीं।

'कहो माला, कैसा खेल रहा ?'

'आँ-आँ—अरे हाँ-हाँ—ओह, बड़ा सुन्दर। जितनी बार देखती हूँ, नवीनता पाती हूँ। यमुना-बरुआ ने तो अपने अभिनय से चार चाँद लगा दिए हैं। और सहगल के गाने—उसकी दर्दभरी आवाज़—वेदना-सी भरी बातें तो भुलाए नहीं भूलतीं।—देवदास—शरत् की अनुपम देन! आपने शरत्-साहित्य पढ़ा है या नहीं ?'

'नहीं—।'

'उफ़! आपने आजतक शरत् को नहीं पढ़ा ? धन्य हैं आप! मेरे पास उनकी सभी कृतियाँ हैं। मेरी वर्षगाँठ के अवसर पर अजीत बाबू ने एक बार मुझे शरत्-साहित्य ही भेंट किया था। इस बार घर जाऊँगी तो सारी पुस्तकें लाऊँगी। आप उन्हें ज़रूर पढ़ें। देवदास, गृहदास, श्रीकान्त, शेष प्रश्न, चरित्रहीन।······'

माला फिर अपने आप में खो गई। अरुण उसे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा है—देख रहा है।

'मालकिन ! आपको एक बार मैके हो आना चाहिए। जी बहल जाएगा। मगर आप तो घर से बाहर निकलना ही नहीं चाहतीं। बस, दिनभर घर में पड़े-पड़े पढ़ना, सीना, कुछ गुनगुनाना या चौके में जाकर खाना बनाना। इसीलिए आप चुप-चुप-सी रहती हैं। नई-नई बहुएँ दस बहुओं के साथ रहती हैं तो जी बहलता है। ननदों की तोताचश्मी से मन भरा रहता है। और हमारे घर में हैं भी तो बस—वही, एक साहब। आखिर आप उनसे कितनी बातें करेंगी ? बनारस से बड़ी बहू को आकर कुछ दिन यहाँ रहना चाहिए था।—हूँ····साहब बहुत खुश होंगे तो कहेंगे कि भल्ला साहब के यहाँ चलो, माया के साथ खेलो या झट तैयार हो सिनेमा चलो। यह भी लगन में कोई लगन है ? राम ! राम !! '

'क्या बेसिर-पैर की बकती रहती है ? चुप रह।'

'ना मालकिन, इस तरह आपका गुमसुम पड़े-पड़े रहना मुझे नहीं भाता। ज़रा भी नहीं लगता कि नई-नई शादी हुई है। ज़रा कुछ सरगर्मी—कुछ चहल-पहल……'

'तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है।'

'हाय राम, मैं ही करार दे दी गई पागल? यह लो… नई बहू का न साज-शृङ्गार देखती हूँ और न हाव-भाव। सदा सादी-सादी-सी दिखती हैं आप। बक्सों में रंगीन साड़ियाँ भरी पड़ी हैं, सेफ में गहने भरे पड़े हैं, मगर हमारी मालकिन को तो सुहाती है आबेरवाँ की सुफेद साड़ी तथा गले में एक सोने की चेन। राम! राम!! क्या रूप बना रखा है आपने!'

'दुर पगली! जा, जा—अपना काम देख।'

'ना, मै अपना काम देखने न जाऊँगी। बदलिए यह सफेद साड़ी—यह जोगन का रूप। मैं तो अपनी शादी के बाद महीनों चुनरी पहने रहती थी—गहनों से भरी रहती थी। और आप!…राम-राम! यह शोभा नहीं देता।'

पन्ना उसकी मुँहलगी दाई है। दौड़कर बक्स में से एक सुनहली साड़ी निकाल लाई और ज़िद पकड़ ली कि पहनिए इसे—अभी पहनिए।

पन्ना के आग्रह पर माला ने रंगीन सुनहली साड़ी पहन ली और कहा—'लो, अब तो जान छोड़ो!'

'नहीं, अभी नहीं, खोलिए सेफ़ और निकालिए कंगन और गले का हार।'

'दुर, क्या तमाशा बना रही हो मेरा! जा, जा।—'

'नहीं-नहीं, आज तो मैं जाऊँगी नहीं। देखिए, मुहल्ले की सभी स्त्रियाँ मुझसे मज़ाक करती रहती हैं—कैसी बहू आई है? न साज, न शृङ्गार। जोगन ही बनना था तो माँग क्यों भरवाई? छीः, इसकी गोद क्या भरेगी?—मालकिन, सच कहती हूँ, मैं तो उनकी बातों को सुनकर लाज से गड़ जाती हूँ।'

माला हैरत में है। दूर के लोग इन बातों को कैसे जान जाते हैं?

आज पन्ना ने माला को नई बहू के साँचे में ढाल दिया और साहब को आते देखकर दूर सरक गई।

'ओह! सचमुच सूरज पश्चिम में उगना है! बड़ी तैयारी है आज! आज किधर बिजली गिरेगी?'

'आप पर!'

'इतना ख़ुशकिस्मत मैं नहीं हूँ माला!'

'वाह! आप ही के लिए तो यह सब कुछ है—यह सुनहली साड़ी—ये कंगन—ये हार—यह टीका—यह अदा—यह रौनक़!'

'क्या सच कहती हो माला ?'

'तो इसमें भी आपको कोई शक है क्या ?'

'नहीं, नहीं। तुम्हारे इतना ही कहने में मुझे सब कुछ मिल गया—मैं धन्य-धन्य हो गया।'

अरुण ने उसे छाती से लगा लिया। पन्ना पर्दे की ओट से अपना रचा हुआ नाटक देख रही है। हँस रही है—इतरा रही है।

'चलो, अभी भल्ला साहब के यहाँ चलें। तुम्हें इस रूप में देखकर मिसेज़ भल्ला बहुत खुश होंगी। अभी उस दिन मुझसे शिकायत कर रही थीं कि बहू इतनी सादी-सादी-सी, इतनी गुप-चुप-सी क्यों रहती है ? उसे साज-शृङ्गार किए रहना चाहिए—नई बहू जो ठहरी !'

'क्या आप भी मेरा मज़ाक उड़वाना चाहते हैं ?'

'मैं ? मज़ाक तो महल्ले भर से तुम ख़ुद उड़वा रही हो।'

'तो लीजिए, मैं तैयार हूँ। चलिए, अभी चलिए—।'

'वाह ! ज़रा चाय तो पी लेने दो—कपड़े तो बदल लेने दो—फिर चला जाय।'

आज माला को नई बहू के रूप में देखकर मिसेज़ भल्ला को कौतूहल तथा आनन्द दोनों आया। बड़े तपाक से मिलीं—

'बस, बहू! यही मैं चाहती हूँ। तुम साज-शृङ्गार न करोगी तो लोग-बाग खुश न होंगे। माया! आज बहू ने मेरे मन-लायक शृङ्गार किया है। चलो, इसका मुँह मीठा करो।'

सब हँस पड़े। माला ने भी हँसने की कोशिश की। मिस्टर भल्ला तथा अरुणचन्द्र ऑफिस के मामलों को लेकर गप्पें करने लगे और मिसेज़ भल्ला, माला तथा माया ताश पर जुट गईं। खेल में अक्सर माला भूल कर जाती—रहते-रहते कुछ उलट-पुलट कर पत्ते चल देती तो मिसेज़ भल्ला टोकतीं—'ज़रा मन लगाओ बहू! कहाँ है मन तुम्हारा! माँ के यहाँ चला गया क्या?'

'नहीं-नहीं, अभी खेल सीख जो रही हूँ मैं!'

'वाह भाभी! इतने दिनों से खेलती हो मगर अभी तक न खेलने आया? क्या ग़ज़ब करती हो!'

वह हँसने लगती। दो-चार बार फिर कुछ ठीक से खेलती—मगर फिर वही बात। उसका जी न रमा। सर-दर्द का बहाना कर उठ बैठी और घर जाने को तैयार हो गई।

'क्यों, कैसा जी है? इतनी जल्दी क्यों भाग आई?'—रास्ते में अरुण ने पूछा।

'अच्छा ही है।'

'तो फिर……'

'कुछ नहीं ।'

घर आकर उसने सभी कपड़े-गहने उतार दिए और अपने मन की वही सफेद साड़ी और चेन फिर पहन ली ।

'ऐ लो ! हो गया साज-शृङ्गार ? न पहनते देर—न उतारते देर ! बहू रानी, कैसा तुम्हारा मिज़ाज हो गया है ! तुम्हारी कोई भी थाह मुझे नहीं मिली आज तक ।'—पन्ना ने टोक दिया ।

'नहीं मिली तो ठीक ही हुआ पन्ना ! ये साज-शृङ्गार मेरे लिए गले की फाँस—फन्दे बन जाते हैं । जितनी देर सजी रहती हूँ, एक सजा हो जाती है—उब-चुब होती रहती हूँ । ये बनावटी बख्तर हटे तो भार हल्का हुआ—जान में जान आई ।'

'मगर मन तो वैसा का वैसा है ! बस, एक कोने में किताब लेकर आप बैठ जाइए और दूसरे में साहब ।'

'और हो गया सारा रोमान्स इतने ही में !'

'हाँ ! मैं सच-सच कहती हूँ, मुझे तो पता ही नहीं चलता कि आप दोनों की नई-नई शादी हुई है या नहीं !'

'माला रानी ! आज मुझे मिठाइयाँ खिलाओ । लो, तुम्हारे अजीत का यह दूसरा पत्र—मन रमाने का एक नया खिलौना ।' कहते अरुणचन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया । माला शरमा

गई—लाज से हाथ नहीं बढ़ा रही थी मगर चेहरे पर हँसी लोट गई। लाज और आनन्द दोनों से मिली-जुली हँसी—एक-से-एक में गुँथी हुई हँसी।

अरुण ने देखा कि क्षण भर में उसकी काया ही पलट गई—सृष्टि ही बदल गई। क्या यह वही माला है—वही? नहीं-नहीं। लाख छिपने का प्रयास करती, परन्तु क्या छिप पाती? अरुण ने फाइलों के अम्बार में अपना मुँह छिपा लिया और गुनगुनाता रहा—'साफ़ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं!'

✥

अजीत की मेज पर एक अटैची पड़ी रहती है जिसमें पत्रों की एक फाइल रखी है। जब वह ऑफिस जाने लगता है तो उस अटैची में ताला लगा देता है। रात्रि की नीरवता में या भोर के शान्त वातावरण में उस अटैची को खोलकर उन पत्रों को उलट-पुलटकर अक्सर पढ़ने लगता है—सिनेमा के रील की तरह चित्र उभरते-मिटते रहते हैं। हर तारीख के पत्र एक-एक दृश्य खड़ा कर देते हैं। किरण भी कभी उन पत्रों को पढ़ती या सुनती। फिर चुप हो उसके साथ-ही-साथ अपनी समवेदना व्यक्त करती।

आज अजीत एक-एक पत्र उठाकर पढ़ता है—पढ़ता ही जाता है—एक नहीं, अनेक—एक के बाद एक।

× × ×

"आपके दोनों पत्र मिले। इसके लिए ऋणी हूँ। आपकी याद में माला अब भी बरक़रार है—यह मेरे लिए शुभ बात

है। क्षमा चाहती हूँ—शीघ्र उत्तर न दे सकी। आखिर देती भी कैसे? पतिदेव की सेवा पहले, सारी दुनिया पीछे। यही तो आप गुरुजनों की आज्ञा थी। मैं बहुत प्रसन्न हूँ—अति-प्रसन्न। पतिदेव भी खुश हैं—खुश ही हैं।.........परन्तु मैंने उन्हें धोखा नहीं दिया—चाहती भी नहीं हूँ कि उनको धोखा दूँ। धोखा देने से—भुलावे में रखने से क्या फ़ायदा? फिर यह मेरे स्वभाव के विरुद्ध था। मैंने प्रणय-रात्रि को ही उनसे माफ़ी मांग ली। यदि अपराध है तो अपराध ही सही—मगर माला के जीवन का सत्य यही है। मैंने कोई मन की बात छिपाई नहीं। दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँक कर पीता है। मैं भुक्तभोगी हूँ, इसलिए दुबारा ग़लती करना मुझे पसन्द न था। परन्तु हाय राम! पतिदेव पहली ही रात डोल गए। सुबह को जब मैं उठी तो उन्हें रातभर कुर्सी पर बैठे-बैठे तारे गिनते देखकर मुझे बड़ी ग्लानि हुई! मगर मैं करती तो क्या? उनका चेहरा ही बदरंग हो गया था। स्याह—काला। हाय! क्या क़िस्मत पाई है इन्होंने! पहली तो साल लगते-न-लगते चल बसी और दूसरी आई भी तो ज़िन्दा लाश!..........मगर पतिदेव के जीवट की मैं प्रशंसा करूँगी। वह जीवन में हार मानना नहीं जानते। किसी भी मूल्य पर वह जीवन का रस लेना चाहते हैं। शायद सोचते हों, यह आखिरी दाँव है। उन्होंने गरल

पी लिया है और मेरे जीवन को एक नए सिरे से प्रारम्भ करने का संकल्प ले लिया है। प्रयास बड़ा सुन्दर है। मैं भी चाहती हूँ उनको सहयोग देना। मैं नहीं चाहती कि उनका सपना टूट जाए। इसीलिए मैं अपना भी पार्ट बड़ी खूबी से अदा कर रही हूँ। आशीर्वाद दें कि मेरा अभिनय सफल हो। आपही तो नाटककार ठहरे। नाटक की सफलता कुशल अभिनय पर ही निर्भर करती है। देखना है, आपका नाटक सुन्दर ढंग से अभिनीत हो पाता है या नहीं। यदि दर्शकों के बीच से तालियों की गड़गड़ाहट न सुनाई पड़ी तो समझिए कमी आपकी है, कुछ मेरी नहीं।

आपका पहला पत्र जबतक न मिला था मैं उन्मादिनी-सी हो गई थी—जी को इतना समझाती कि आखिर किधर उलझ जाता है तू! पतिदेव 'नेग्लेक्ट' हो रहे हैं। मगर वह तो जैसे मेरे काबू में ही न था। क्या करती? पकड़ी ही गई। आपका पहला पत्र पतिदेव ने मुझे हँसते-हँसते दिया और दूसरा जरा सहमते-सहमते। मैं हँसने लगी, इसमें सहमने की कौन-सी बात है!"

× × ×

"आपके दोनों पत्रों का उत्तर मैं दे चुकी हूँ, मगर आपका कोई भी पत्र नहीं आया। आप जानते हैं, मैं आपके पत्रों के

ही सहारे इस संकट को पार कर रही हूँ; मगर आपको मुझपर तनिक भी दया नहीं आती। महीने में एक पत्र भी भेज देते तो एक दिलासा होता, मगर आपसे वह भी न हो पाता। कैसी ज़िन्दगी आपने बना रखी है मेरी! हँसी भी आती है और रोना भी आता है।

मैं पतिदेव के साथ इधर दौरे पर गई थी। छः दिन कैम्प में रहना पड़ा। कई दूसरे अफसरों की बीवियाँ भी साथ-साथ कैम्प कर रही थीं। जी कुछ बहला तो ज़रूर, मगर उस शान्त-सौम्य वातावरण में भी वह रम न पाया। इलाहाबाद से जब-जब चपरासी डाक ले आता, तो पतिदेव चिट्ठियों का अम्बार पहले मेरे ही पास भेज देते—जैसे मेरे मन की सारी बात वे जान रहे हों—मगर आपका पत्र न देखकर मैं अपना 'मूड' ही बिगाड़ लेती।···अब मेरे 'मूड' पर अपनी 'सरकिल' में काफी टीका-टिप्पणी होने लगी है। पतिदेव भी परीशान रहते हैं—उनकी परीशानी तो मैं ही ठीक-ठीक समझ पाती हूँ।"

× × ×

"आपका कोई पत्र नहीं आया। ऐसी नाराज़गी क्यों? जो आँखों से ओझल हो जाता है, वह शायद दिल से भी ओझल हो जाता है। परन्तु आपसे ऐसी उम्मीद न थी।

जैसे-जैसे पतिदेव मुझसे दूर होते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे शायद आप भी दूर हो रहे हैं। यह कैसी लीला! भगवान के लिए अब भी तो लीला समेटिए। अपनी क्या कहूँ? जान पड़ता है, पतिदेव के सब्र का बाँध टूट रहा है। अक्सर बोल देते हैं—'पत्र आना क्यों बन्द हो गया? क्या लिख दिया आपने?' मैं चुप। फिर ताना—'पत्र आते रहते थे तो मुझे शान्ति रहती थी—आपका मूड ठीक रहता था। अब तो आप बराबर मूड बिगाड़े रहती हैं।' मैं फिर भी चुप रहती हूँ। मेरे पास उनसे कहने को रह ही क्या गया है! सब पहले ही बता चुकी हूँ।………अब मेरी ओर से उनकी आसक्ति भी घटती जा रही है। अक्सर सिनेमा अकेले ही चले जाते हैं—किसी मित्र से भी मिलने मुझे छोड़कर ही भाग जाते हैं। दौरे पर तो मेरा जाना अब बन्द ही हो गया है। अन्य अफसरों की बीवियाँ यदि कुछ पूछती भी हैं तो झट जवाब दे देते हैं—'उसकी गृहस्थी बहुत बढ़ गई—अब वह बार-बार घर छोड़कर बाहर नहीं जा पाती। फिर उसका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता।' कभी-कभी मिसेज भल्ला जिद पकड़ लेतीं हैं तो कहते हैं—'उसकी माँ का बुलावा आया है। उसे मैके जाना है।'

अब वह खाने की मेज पर मेरा इन्तजार नहीं करते। मेरे आते-आते खाना खाकर उठ जाते हैं। कभी-कभी मैं साथ भी

देती हूं, तो वह चुपचाप खाते रहते हैं—कोई बात मुश्किल से होती है। कभी-कभी दिन का खाना ऑफिस में ही मँगाकर खा लेते हैं। जब मैं पूछती हूं कि घर क्यों नहीं आए तो वही चिर-परिचित उत्तर मिलता है—'काम बहुत बढ़ गया है।'

मैं इस जीवन से ऊब-सी गई हूं, इसलिए कुछ दिनों के लिए बनारस जा रही हूं। क्या वहां आपके दर्शन होंगे ?

दर्शनाभिलाषिनी

माला"

× × ×

"मैं बनारस गई थी और काफी दिनों तक वहाँ रहकर चली भी आई, मगर आपके दर्शन नहीं हुए। इधर जब-जब मैं बनारस गई तो यह उम्मीद बाँधे रहती थी कि आपके दर्शन अवश्य होंगे, मगर सदा निराश ही होना पड़ा। आपकी ऐसी मति हो जाएगी, इसकी मुझे स्वप्न में भी उम्मीद न थी। यही भाग्य है मेरा। जिसके लिए लोक-लाज खोई, वही पराया बन गया। इस बार तो पतिदेव ने पूछ भी दिया—'क्या इस बार भी भेंट न हुई ?' मैंने कहा, 'नहीं।'

'आश्चर्य है !' कहकर वह चुप हो गए। परन्तु अब तो उनका व्यवहार बहुत कटा-कटा-सा रहता है। सुबह नाश्ता करके निकलते हैं तो बहुत रात गए लौटते हैं। दिन का खाना

ऑफिस में ही जाता है, मगर कभी खाते हैं, कभी नहीं भी खाते। रात में तो बाहर ही कहीं खा लेते हैं। उनके साथ मेरा कहीं भी आना-जाना अब बन्द-सा ही हो गया है। मुझसे भी बहुत कम बातें करते हैं। मैं ही उनकी गोद में सरिता को खेलाती-खेलाती रख देती हूं, तो कुछ देर को उनके चेहरे का रंग बदल जाता है। परन्तु फिर वही रुआँसा चेहरा। पन्ना तो परीशान रहती है। कहती है—'मालकिन की गोद भी भरी, मगर साहब का मिज़ाज न सुधरा। जाने क्या इनको हो गया! नित-प्रति मन और शरीर से गिरते ही जाते हैं। जैसे घुन लग गया हो।' मैं भी उनके स्वास्थ्य का यह हाल देखकर बहुत चिन्तित रहती हूँ। मगर करूँ तो क्या करूँ? अपनी तरफ से तो कुछ उठा नहीं रखती। एक पैर पर उनकी सेवा करने को तत्पर रहती हूँ। मगर मेरे किए कुछ होता-जाता नहीं।

सरिता आपको नमस्ते भेजती है।"

× × ×

"आपने तो शायद कसम खा ली है कि मुझे पत्र न लिखेंगे। और एक मैं हूँ कि आपको पत्र लिखते-लिखते परीशान किए रहती हूँ। आखिर आप मेरे पत्रों को पढ़ते भी हैं या नहीं—राम जाने! है इतना भी अनुराग मुझपर?

सब भगवान्-भरोसे ही किए जा रही हूँ। पता नहीं, मेरे पत्र आपको मिलते भी हैं या नहीं। इस बार बनारस गई थी तो मुझे खबर मिली थी कि आप अभी भी फैक्टरी में ही हैं।··· यहाँ एक घटना घट गई है। पतिदेव एक दिन बिना सूचना दिए ही दौरे पर चले गए। मैं रातभर जागी रही—एक पैर फाटक पर रहता और दूसरा बुखार में डूबी हुई सरिता के पलंग पर। जब भोर हो गया और नहीं लौटे तो मैं समझ गई कि वह कहीं मोटर के नीचे आ गए और अब पुलिस मुझे खबर करेगी।······फिर उनके ऑफिस का किरानी आया और कह गया, साहब कल दोपहर में ही दौरे पर चले गए। हाय राम ! न एक कपड़ा, न बिछावन, न शेव करने का सामान—कुछ भी साथ न ले गए। कैसे होंगे वह ! अपना इतना भी ख्याल नहीं करते और मेरे लिए सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। उफ़, मुझे बड़ी ग्लानि हुई। जी में आया, इसी ग्लानि में आत्महत्या कर लूँ—इस तरह जीने से फ़ायदा ? मगर सामने पड़ी सरिता टुकुर-टुकुर देख रही थी। ममता की जीवित शिखा ! शिवमंगल से मैंने इनका सारा सामान दौरे पर भेज दिया और दिनभर रोती रही—तड़पती रही। दूसरे दिन शिवमंगल आया तो दूसरी ही खबर लाया। बहुत आँधी-पानी आया और कैम्प मध्यरात्रि के उपरान्त पानी से सराबोर हो जमीन पर

आ गया । गिरने के कुछ ही क्षण पहले वे बाहर निकल गए थे, वर्ना आज उनकी क्या गति हुई रहती ! भींगते-भागते एक पड़ोस के मकान में शरण ली । रातभर काफी भींगते रहे—सर्दी लग गई है और काफी बुखार चढ आया है । शिवमंगल जब चल रहा था तो वह बुखार की गर्मी से तड़प रहे थे ।

वह नहीं आने को तैयार था, मगर पतिदेव ने ज़िद पकड़ ली—'मेमसाहब अकेली-अकेली घबड़ा रही होंगी, तुम तुरत लौट जाओ ।' बेचारा क्या करता ? उलटे पाँव लौट आया । अब उनकी बीमारी का हाल सुनकर भला मैं यहाँ कैसे रह सकूँगी ? जी घबड़ा रहा है । सरिता का बुखार उतर आया है । उसे पन्ना के साथ यहाँ छोड़कर डाक्टर को साथ लेकर दौरे पर जा रही हूं । देखिए, क्या होता है ''' ''' ''

× × ×

"मेरी परीशानियों से भी आप नहीं पसीजे, यह भी आश्चर्य ही है । आज भी आपकी कोई चिट्ठी नहीं आई ।''' मैं पतिदेव को लेकर 'एम्बुलेन्स' से इलाहाबाद लौट आई । उनकी हालत अति-शोचनीय है । डाक्टर बता रहे हैं कि उनको 'प्लुरिसी' हो गई है । टी० बी० का पहला स्टेज ।

फेफड़े में पानी आ गया है। उसे ट्यूब से निकाला जा रहा है। बुखार भी रहता है।

वे अस्पताल में पड़े हैं। दो-दो नसें भी हैं। परन्तु मैं रात-दिन अस्पताल में ही रहती हूँ। सरिता को भी एक कोने में सुलाए रहती हूँ। अस्पताल में आकर पता चलता है कि संसार कितना असार है। तरह-तरह के रोगी, तरह-तरह के रोग। कोई जीवन पाकर लौट रहा है, तो कोई जीवन खोकर लौट रहा है। संसार का एक 'क्रॉसरोड'। देखिए, हमारे हाथ क्या आता है! डॉक्टर कहता है कि उचित उपचार से जान बच जाएगी। इसी विश्वास पर मैं रात-दिन एक किए हूँ। बनारस से जीजी और भैया भी आए हैं। माँ भी आई थीं। बड़ी रो रही थीं। दीदी और जीजाजी भी आए थे। अपने जनों में बस आप ही नहीं आए। पैसे की इस समय कोई क़ीमत नहीं। हमारे पास जो कुछ पूँजी थी, सब हमने दाँव पर रख दी है। देवी-देवता, पित्तर-पाठ में भी कोई कमी नहीं होती। विन्ध्याचल में भी पाठ बैठवा दिया है। एक पण्डित उनकी बगल में भी बैठकर पाठ करते हैं। मैं भी कोई व्रत-नेम छोड़ नहीं रही हूँ। सभी किए जा रही हूँ। एक आस—एक विश्वास के साथ। अब मैं रात-रात भर जागने की अभ्यस्त हो गई हूँ। दिन-दिन भर, रात-रात भर बिना खाए रह

जाती हूँ। कोई कठिन व्रत मेरे लिए कठिन न रहा। सभी सध गए हैं।······एक दिन रात्रि में पतिदेव को नींद नहीं आ रही थी। एक पोज़ में पड़े-पड़े ऊब-से गए थे। उनका सर अपनी गोद में लेकर रात भर उनका माथा सहलाती रही। कभी-कभी वे कहने लगते—'माला! तुमसे मुझको सब कुछ मिल गया—प्यार, सेवा, स्नेह, प्रेम······यानी सब कुछ। अब कितनी रात तक जागोगी? सो जाओ।' मैं चुप रही, तो उन्होंने फिर कहा—'परन्तु इतना सब कुछ होने के बाद भी शायद मुझे कुछ न मिला—ऐसा मुझे एहसास होने लगता है—कभी-कभी—सब छूछा-छूछा, रीता-रीता-सा लगता है। ऐसा क्यों? जाने क्यों? समझ में नहीं आता।' मैं चुप थी। मेरी आँखें उस समय गीली थीं।"

× × ×

"अब मैं इस विश्वास पर लिख रही हूँ कि मुझे कभी भी आपका कोई पत्र नहीं मिलेगा। मेरे पत्रों को आप पढ़ते भी हैं या नहीं—राम जाने! हमलोग नैनीताल चले आए हैं। अस्पताल से पतिदेव एकदम अच्छे होकर निकल आए थे। ऑफिस भी जाने लगे थे। मगर कुछ दिनों बाद उन्हें सन्ध्या समय बुखार आ जाता। बुखार का प्रतिदिन आना फिर चिन्ताजनक बात हो गई। डाक्टरों की राय हुई कि 'चेंज'

के लिए इन्हें पहाड़ ले जाया जाय। मि० भल्ला ने मुझपर बड़ी कृपा की। अपना पूरा बंगला हमारे हवाले कर दिया। यहाँ आने के कुछ दिनों के बाद बुखार आना बन्द हो गया और वजन भी बढ़ा। अब तो कुछ दूर तक टहल भी लेते हैं। एक दिन झील में नौका-विहार के लिए भी हम गए थे। बड़ा मजा आया। नयनादेवी के मन्दिर में मैं प्रतिदिन जाती हूँ और इनके स्वास्थ्य के लिए मिन्नतें मानती हूँ। वहीं से पतिदेव हमलोगों को जबर्दस्ती पकड़कर 'कैपिटल' सिनेमा ले जाते हैं। कई-एक अच्छे-अच्छे दोस्त यहाँ बन गए हैं। कभी-कभी उनका भी निमन्त्रण रहता है। हर एतवार को पिकनिक होती है। कभी 'चायना-पिक' की ओर भी बढ़ जाते हैं। बड़ी ऊँची चढ़ाई है। सर्दी अभी यहाँ बिल्कुल नहीं है। लोग कहते हैं, दिवाली बाद रहना मुश्किल हो जाता है। हाँ, बारिश कभी-कभी हो जाती है।

सरिता अब कुछ बड़ी हो गई है। उसका फोटो तो आपको मिला होगा। खूब बातूनी है। एक आदमी उससे बातें करने को उसके साथ बराबर रहे। यहाँ एक अच्छी आया मिल गई है। वही उसकी देखभाल करती है। मुझे तो इनके ही कामों से फुर्सत नहीं मिलती। इनके भैया भी साथ आए हैं। पन्द्रह दिनों बाद घर लौट जाएँगे तो जीजी आएँगी। अभी

हमारे प्रोग्राम का कुछ भी ठीक नहीं। सब इनके स्वास्थ्य और डॉक्टर की राय पर निर्भर है। किरण बहन को मेरी याद दिला देंगे। सरिता आप सबको नमस्ते कहती है।"

× × ×

"मेरी अन्तिम कहानी। कुछ अर्से बाद लिख रही हूं। शायद आपको भी आश्चर्य हो। एक दिन हमलोग पिकनिक को गए थे। दिन भर खूब घुमाई हुई और सन्ध्या बाद घर लौटे। घर आने पर पतिदेव का टेम्परेचर लिया तो १००°। अरे, यह क्या? पहाड़ आने पर यह पहली बार। जी बहुत घबड़ा उठा। वे हँसते रहे। कहा, 'क्यों परीशान होती हो? शरीर ही तो है—कभी सर्दी, कभी गर्मी।' मुझे इतमीनान न हुआ। एक दिन और इन्तज़ार किया। जब बुखार न उतरा तो डॉक्टर को बुलवाया। डॉक्टर ने पूरी परीक्षा की, मगर बुखार के कारण का उसे कुछ पता न चला। कहा—'वाच कीजिए। दवा देता हूँ।' कुछ दिन यों ही गुजर गए मगर जब कोई फ़ायदा न हुआ तो और डॉक्टरों की राय ली। सबों ने एक मत से कहा कि इन्हें भुवाली सैनेटोरियम ले जाइए। पिछला इतिहास इनका ऐसा है कि कभी-कभी शुबहा हो जाता है। मेरा तो माथा ठनका – दिल दहल गया। मगर उन्होंने तसल्ली दिलाई—'चलो, वहाँ भी क़िस्मत आजमा लें।'

घबड़ाती क्यों हो ? सब ठीक हो जाएगा।'

हम सैनेटोरियम में चले आए और परीक्षा के बाद सभी डॉक्टर इसी नतीजे पर पहुचे कि पतिदेव टी० बी० के मरीज़ हैं। बच्चों को तुरत इनके पास से हटा दिया गया। बाहर एक मकान में जीजी उन्हें लेकर रहने लगीं। यहाँ आने के उपरान्त उनकी हालत दिनों-दिन गिरती ही गई। इतना अच्छा स्वास्थ्य जो नैनीताल में बन आया था वह बर्बाद हो गया और वे पलंग पर शक्तिहीन हो पड़ गए। आंखों में कोई तेज नहीं—शरीर में कोई मांस नहीं। यह हालत देखकर मैं तो सिल हो गई। मगर वे अभी भी हँसते रहते। कहते—'घबड़ाती क्यों हो ? अन्धकार के बाद ही लाली आती है। ये दिन भी एक दिन कट जाएँगे।' मेरे आँसू कभी-कभी खुद पोंछ देते। मैंने उनकी सेवा में, उपचार में कोई भी कमी नहीं आने दी। मगर विधि का विधान ! एक दिन हालत बहुत बिगड़ गई और फिर प्रतिदिन बिगड़ती ही गई। फिर ऑक्सीजन पर रखे जाने लगे ······आँखें और भी निस्तेज हो गईं······

और वह महारात्रि ! अगल-बगल के कमरे में, वार्ड में विराट् शून्यता। सभी मरीज़ जीवन के अन्तिम क्षण गिन रहे हैं। मैं उनके सिर को गोद में लिए बैठी हूँ ! वे कहने

लगे—आवाज में बड़ी क्षीणता थी—कभी-कभी टूट भी जाती—'माला ! मुझे जीवन में सब कुछ मिल गया। अब मुझे वह रीतापन महसूस नहीं होता। मैं भरा-भरा-सा महसूस करने लगा हूँ।······जीवन की साध जब पूरी हुई तो जीवन-सन्ध्या आ गई। यह भी कैसी लीला ! मैं पल्लव और सरिता को तुम्हारे और अजीत बाबू के भरोसे छोड़े जा रहा हूँ।'··· ···मैं सुबक-सुबक कर उनके गालों में अपने गालों को सटा-सटा कर रोने लगी। खूब रोई। मगर जब रोकर उठी······ तबतक वह जा चुके थे।······

तो पल्लव और सरिता की मुझे माँ बनाकर वह चल बसे।······ ''

× × ×

'माँ, माँ ! बाबू जाने कैसा कर रहे हैं। दौड़ो-दौड़ो···।' अमिताभ ने जोरों का शोर मचाया।

अजीत के हाथों से चाय की प्याली गिरकर चूर हो गई है और वह पलंग पर छटपटा रहा है—बिल्कुल पागलों की तरह। सभी पत्र इधर-उधर बिखर गए हैं।

······कि किरण दौड़ी चली आई और बोली—'आप क्यों परीशान हो रहे हैं ? अब इससे क्या होने-जाने को है ? जाइए—अभी जाइए; बल्कि मुझे भी लेते चलिए, माला से

मिल आएँ, कुछ दिलासा दें, उसे लेते भी आएँ—कुछ दिन यहाँ रहने से उसका भी जी बहल जाएगा।'

अजीत ने किरण को कोई उत्तर न दिया। किरण ने सभी पत्रों को चुनकर अटैंची के हवाले कर दिया, फिर टूटी हुई प्याली के चूर चुनकर बाहर फेंक आई।

उसने लाख समझाया-बुझाया पर अजीत का दिल सम्हाल में न आया। न किसी से मिलना-जुलना, न किसी से बात-चीत। पलंग पर पड़े-पड़े मर्माहत स्वर में कराहता रहता, लम्बी सर्द आहें खींचता और आँखों में आँसू की झड़ी लग जाती। चेहरा ऐसा हो गया कि पहचान में नहीं आता। बाल बिखरे हैं—कितने दिनों से तेल-कंघी से कोई सम्पर्क नहीं। दाढ़ी बेतरह बढ़ आई है, आँखें सूज गई हैं।

अरुणाचन्द्र की मृत्यु ने माला को झकझोर कर रख दिया। वह मन्न है—चकित! जीवन ऐसा भयंकर करवट ले लेगा और वह भी इतना शीघ्र—इसका उसे कभी एहसास भी न हुआ था। कुछ ही सालों ने जीवन के पूरे साल पूरे कर दिए। जीवन के कितने पहलू आए और चले गए और माला किनारे खड़ी-खड़ी सागर की उस लहर का इन्तज़ार कर रही है जो जीवन की तमाम लहरों को हिलोर कर, लिए चली जाए। हृदय में एक अजीब रीतापन—मन में तीखा सूनापन। गोद तो भरी है अवश्य परन्तु मन!—वह कहाँ भरा?

अरुणाचन्द्र की अन्तिम क्रिया के बाद बनारस की ऊँची हवेली काटने लगी उसे। माँ और दीदी के यहाँ रहकर कुछ दिन समय बिताने को उसकी इच्छा न होती। कभी-कभी वहाँ जाती, मगर माँ के आँसू देखकर और भी घबड़ा उठती। दीदी

और जीजाजी का अपना जीवन—ऐश्वर्य और महलों का। वहाँ तक उसकी पहुँच कहाँ?

एक दिन उसने अपने पुराने स्कूल की अध्यापिका श्रीमती शरण को लखनऊ पत्र भेजा। अपने जीवन की विराट् शून्यता से उन्हें अवगत कराया और उनसे सहायता की भीख माँगी। श्रीमती शरण बनारस से अवकाश प्राप्त कर लखनऊ में एक बालिका-विद्यालय की प्रधानाध्यापिका हैं। अपनी छात्रा की यह दशा देखकर उनका दिल पिघल गया। स्कूल के मन्त्री श्री नवल प्रभाकर से उन्होंने राय की और माला को अपने स्कूल में रखने का सारा काम सिद्ध कर लिया।

माला को जिस दिन नियुक्ति का पत्र मिला उस दिन उसके मुरझाए हुए चेहरे पर एक आशा की किरण फूट पड़ी। जीजी और उसके पति को भी यह काम पसन्द आया। अकेली पड़ी रहने से कुछ करना कहीं अच्छा। ज़िन्दगी एक लीक पर चलने लगेगी और मन भी बहलेगा।

उधर अजीत को जब माला का पत्र लखनऊ स्कूल से मिला तो उसका ज़र्रा-ज़र्रा काँप गया—माला और नौकरी! कहाँ आज वह बहू रहती और कहाँ स्कूल की नौकरी कर ली! वैधव्य और यौवन····फिर दो-दो बच्चों की माँ! कहाँ रहेगी, कैसे रहेगी? किस तरह यह ज़िन्दगी कटेगी? इतनी छोटी

उम्र और इतनी सारी समस्याएँ !—उसका माथा चकराने लगा। वह पलंग पर लेट रहा।

'क्यों, फिर तबीयत खराब लगती है। ऐसा मुँह क्यों बना लिया ?'—किरण ने पूछा।

'कुछ न पूछो किरण, जिस दिन से माला का यह हाल हुआ, मुझे लगता है, उसी दिन से मेरी दुनिया भी लुट गई। पढ़ा है तुमनें उसका खत ? वह लखनऊ आ गई है। किसी स्कूल में अध्यापिका हो गई है। श्रीमती शरण के घर एक कमरे में रहती है। उनके घर का सारा भार अपने सर उठा लिया है तब उसकी गुजर हो रही है। दो-दो नादान बच्चे और स्कूल की मास्टरी ! यह सब कैसे निभेगा—राम जाने।'

'मैंने तो खत पढ़ा है—परन्तु आप भी तो बर्फ हो गए हैं.......।'

'तुम चाहती क्या हो ?'

'अजी, एक बार भी तो उससे मिल आइए। अपनी आँखों देख लीजिए, वह कैसे रह रही है—क्या कर रही है ? आपने तो जमाने से उसके यहाँ आना-जाना छोड़ दिया है—उसकी कोई सुध नहीं लेते—पत्र का उत्तर तक नहीं देते। वही बेचारी एक आस—एक विश्वास से आपको सदा लिखती

रहती है—अपनी कहानी सुनाती रहती है। शायद इतने से ही उसे शान्ति मिलती हो— सान्त्वना मिलती हो।

अजीत चुप रहा। एक गहरी साँस ली और खिड़की से दूर क्षितिज की ओर कुछ देखता रहा—देखता रहा। उसकी सूनी-सूनी आँखें जाने क्या समाधान ढूँढ़ रही हैं।

'और आप भी उसकी चिन्ता में घुलते जा रहे हैं। जब से माला पर दुःख का यह पहाड़ गिरा है—कभी आपने आइने में अपनी सूरत देखी है? उतरा चेहरा—तितर-बितर माथा के बाल—भरी-भरी आँखें—ललाट पर गहरी रेखाएँ। इस तरह कितने दिन चलेगा? कोई-न-कोई रास्ता तो निकलना ही चाहिए।'

'हाँ, सोचा क्या और हुआ क्या! हरिइच्छा बलीयसी।····तुम ठीक ही कहती हो। एक बार लखनऊ से हो आऊँ।···फिर·······।'

लखनऊ जब गाड़ी पहुँची तो सन्ध्या सघन हो चुकी थी। रास्ते पर बत्तियाँ जल चुकी थीं। वेटिंग-रूम में सामान रखकर अजीत आराम-कुर्सी पर लेट रहा और सोचने लगा कि आगे फिर······आज ही चला जाएगा या कल? यदि आज मिलना है तो मिसेज शरण के घर पर जाना होगा और यदि कल मिलना है तो स्कूल में।·······चलो, कहीं बाहर घूम आएँ।

उसने एक ताँगा ठीक किया और निकल पड़ा यों ही—निरुद्देश्य ।

'किधर चलूँ साहब ?

'जिधर मन हो ।'

'मेरा मन या…'

'एक ही बात है ।'

'आखिर…… ?'

'तो ले चलो हज़रतगंज । वहीं कुछ इधर-उधर….।'

हज़रतगंज इस समय अपनी जवानी के ओज में भरपूर है । हर कोने में चहल-पहल, हर दुकान—हर रेस्तराँ में भीड़-भाड़ ।

'कहिए साहब, ताँगा खड़ा करूँ ?—सामने क्वालिटी है……।'

'नहीं भाई, कॉफी-हाउस चलो । वहीं कुछ देर समय बिताएँ ।'

अजीत कॉफी हाउस में चीप्स के साथ-साथ कॉफी पीने लगा । दो प्याली पी गया । फिर बिल देता उठा और बोला—'ताँगावाले, डालीगंज चलो ।'

'चलिए ।'

उसने ताँगा हाँक दिया। घोड़ा तगड़ा था, झट हवा में उड़ चला।

'.....................'

'देखो, ताँगा धीरे-धीरे हाँको। नम्बर ढूँढ़ना होगा।'

'तो इसी नुक्कड़ पर रोकता हूँ। आप नम्बर खोज आइए।'

अजीत सड़क की रोशनी में मकानों का नम्बर खोज रहा है। कभी-कभी किसी मकान के अन्दर जाकर पूछ बैठता है। खोजते-खोजते एक मकान के दरवाजे पर ठिठककर खड़ा हो जाता है—ओह! यह तो वही चिरपरिचित आवाज़····रात की अँधियारी में थिरक रही है—'ना मैं जानूँ आरती-वन्दन ना पूजा की रीति······' हाँ-हाँ, यह तो माला है—माला!

वह चिल्लाना चाहता है—माला! माला!!—मगर चुप है—सुध-बुध खो सुने जा रहा है उसके गीत की एक-एक कड़ी—'ए री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय।'

उसकी आवाज़ में एक पीड़ा है—एक दर्द, एक वेदना। जीवन के आघात ने उसके दर्द को जगा दिया है—उसके मर्म को छू लिया है। माला की आवाज़ में कभी इतना दर्द न पाया था। ओह! क्या यह माला है? उफ़,······

मासूम बच्ची ! मैंने तुम्हारा गला घोंट दिया—मेरे दामन पर तुम्हारी खुदकुशी के छींटे पड़े हैं।—वह तड़प उठा। अन्दर न जाकर बढ़ा ताँगे की ओर।

'क्या साहब, घर न मिला ?'

'मिला। मगर सभी दरवाजे बन्द हैं—शायद लोग बाहर हवाखोरी को निकले हैं। चलो, स्टेशन चलो। कल फिर आऊँगा।'

दूसरे दिन जाने क्यों अजीत ने चटपट यह निश्चय किया कि माला से स्कूल में ही 'स्टाफ-रूम' में भेंट की जाय। ग्यारह बजे के करीब तैयार होकर वह 'वेटिंग-रूम' से झट निकला और ताँगे पर सवार हो बालिका-विद्यालय की ओर चल पड़ा। मन में एक अशान्ति, एक उथल-पुथल का दुंद बँधा रहा। बराबर यह द्वन्द्व छिड़ा रहा कि स्कूल में मिलना उचित है या नहीं। इसी उधेड़-बुन में बालिका-विद्यालय आ गया।

वह ताँगे से उतर पड़ा। देखा, स्कूल की सभी छात्राएँ अपने-अपने क्लास में हैं। बाहर चिड़िए का पूत भी नहीं। चपरासी ने फाटक पर ही पूछा—'बाबू, किनसे मिलना है ?'

'स्टाफ-रूम' में जाना है—वहीं मुझे एक अध्यापिका से मिलना है।'

'जाइए, शायद उनकी घण्टी खाली हो तो भेंट हो जाय...

अजीत स्टाफ-रूम की ओर बढ़ा। ऐं, यह तो सुनसान सन्नाटा है! कहीं किसी का पता नहीं।

कि पर्दे की ओट से देखा—माला ही वहाँ अकेली बैठी है। कुछ लिख रही है। सूखकर कांटे-जैसी हो गई है। मांग सूनी, चेहरा सफेद, आँखें धँसी हुईं। अजीत एक क्षण पर्दे के पास खड़ा रहा, उसे निहारता रहा—हाय! चन्द सालों में ही यह क्या से क्या हो गई बेचारी! कहाँ फूल-सा खिला चेहरा—हँसमुख, प्रफुल्ल—और कहाँ म्लान नेत्र, मुरझाई हुई सूरत। देखने से पीड़ा होती।

वह धीरे-धीरे अन्दर घुसा। माला की दृष्टि उस पर पड़ी। देखती रही वह—कुछ क्षण देखती ही रही। फिर दौड़-सी पड़ी—'ओ···ओह—आप····अजीत बाबू?'—वह उसके पैरों पर गिर पड़ी।

···कि अजीत ने उसे उठा लिया। वह काँप रही है—शक्तिविहीन। अजीत ने उसे पकड़कर एक सहारे से कुर्सी पर बिठाया। दोनों की आँखें भरी हैं।

कुछ क्षण बाद संयत हो वह बोली—'आपकी यह दशा! अजीत बाबू, आप तो बिल्कुल पहचान में ही नहीं आते। यह लम्बी दाढ़ी, ये अस्त-व्यस्त बाल—आखिर क्या सूरत बना रखी है आपने?'

'जैसे तुम्हारी ही सूरत पहचान में आ जाती है !'

'मेरी सूरत की क्या बात ? जी रही हूँ—बहुत है, बस—

बेकैफ ज़िन्दगी है, जिए जा रही हूँ।

शीशः खाली है, पिए जा रही हूँ।

—मुझपर तो दुख का पहाड़ ही फट पड़ा, फिर ऐसी न होती तो कैसी होती ?···ख़ैर, छोड़िए मेरा पचड़ा—कहिए, किरण बहन कैसी हैं ?'

'सभी अच्छे हैं—किरण और अमिताभ दोनों, मगर तुम्हारी ही हालत सुनकर सभी बेहाल हो रहे हैं। तुम्हें चलना होगा—किरण ने बुलाया है।'

'किरण बहन ने बुलाया है ? क्या सच ?···सच ?'—वह चकित है।

'हाँ-हाँ, सच।'

'तो ज़रूर चलूँगी—ज़रूर····।' फिर वह गम्भीर हो गई।

'क्यों, क्या सोचने लगी ?'

'यही कि अभी तो मुझे छुट्टी मिलेगी नहीं। नई-नई नौकरी—मगर किसी छुट्टी में ज़रूर चलूँगी।····हाँ, ज़रा यह तो बताइए, कैसा है अमिताभ ? बिल्कुल पिता जैसा होगा ! उसे देखने को आँखें तरस रही हैं। ओह, उसके विषय में तो आपने कुछ लिखा ही नहीं।······'

उसका चेहरा फिर रुआँसा हो गया। एक क्षण रुक कर फिर बोली—'अजीत बाबू! इस अर्से में आपने किसी के विषय में कुछ भी न लिखा। मैं तड़प-तड़प कर रह गई, परन्तु आपकी एक पंक्ति भी न मिली मुझे। इतने निष्ठुर निकलेंगे आप—इसकी तो मुझे कल्पना भी नहीं थी। मगर, जब दैव रूठता है तो सभी रूठ जाते हैं। अब तो मैं हार मान बैठी थी। आपसे कभी भेंट होगी—ऐसी आशा भी छोड़ चुकी थी। मगर, आज यह बिनमाँगा वरदान! बड़ी कृपा हुई आपकी मुझपर। लाख-लाख धन्यवाद आपको।'

'तुम भी कैसी बातें करती हो माला!'

'मैं सही कहती हूँ अजीत बाबू! मैं सारी सम्भावना—सारी आशा खो चुकी थी। यह तो आपकी महत्ता है और किरण बहन की महानता कि·····।'

'मुझे ज्यादा लज्जित न करो माला! माफ़ कर दो। मैं तो समझता था कि तुम्हारी नई दुनिया बन रही है—बनी की बनी रहे वह। मगर, हाय···!'—वह हठात् चुप हो गया।

माला हँस पड़ी—हँसती रही। फिर एकाएक उसकी आँखें भर आईं—लबालब। आँसू को रूमाल से पोंछते हुए बोली—'अजीत बाबू! जिस दुनिया की आपने रचना की वह सचमुच धोखे की टट्टी निकलेगी—इसका मुझे भी एहसास न

था।···खैर,—अब उसकी चर्चा क्या ?—जीवन का एक दर्दनाक—खौफनाक अध्याय !'

वह गम्भीर हो गई। कुछ क्षण को सन्नाटा छा गया तो अजीत ने कहा—'पल्लव और सरिता कहाँ हैं ?—'

'सभी साथ ही हैं। भगवान ने मिसेज शरण को मेरे लिए मसीहा बनाकर भेज दिया—नहीं तो मैं मिट चुकी थी, बर्बाद हो गई थी। अब तो एक आस मिसेज शरण की है और दूसरी आपकी !···अब तो आप मुझे न सताएँगे !'—इतना कह वह फूट-फूट कर रो पड़ी। आँखों से नीर झर-झर बहने लगे। कुछ क्षण रोती रही। अजीत को ऐसा लगा कि उसने किसी की हत्या की हो। वह चुप हुई तो अजीत ने रुद्ध कंठ से कहा—'हिम्मत न हारो माला ! दो-दो बच्चों को पालना है।···मैं तो तुमसे क्षमा···· '

'····· ··············· '

कि घंटी बज उठी। माला क्लास-रूम जाने के लिए अपने को तैयार करने लगी। अजीत भी चलने को हुआ तो माला ने कहा—'शाम को मिसेज शरण के यहाँ आइए। मिसेज शरण आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगी।'

× × ×

सन्ध्या समय जब अजीत मिसेज शरण के घर पहुँचा।

तो देखा, माला लॉन में बैठी पल्लव और सरिता को खेला रही है। अजीत को देखकर उसके चेहरे पर खुशी नाच गई और उसने हँसते ही हँसते कहा—'कहिए, मकान ढूँढ़ने में दिक्कत तो न हुई··· ?'

'नहीं, कल मैं यहाँ का एक बार चक्कर लगा चुका था। इसलिए आज कुछ दिक्कत न हुई।···वाह, तो ये हैं सरिता—आपकी मूर्त्ति, और ये हैं मास्टर पल्लव—अरुणाचन्द्रजी के नमूने! ठीक वही नाक-नक्शा। ले बेटे, ले—ले बेटी, ले।' उसने दोनों को टॉफी का एक-एक डिब्बा थमाया और कुछ खिलौने भी।

'वाह! इसकी क्या आवश्यकता थी!'—माला ने कहा।

'तुम जानती नहीं, बच्चों से दोस्ती खिलौने और मिठाइयों से ही की जाती है!'

उधर दोनों बच्चे अचम्भे में पड़ गए इस आगन्तुक को देखकर।

'आओ बेटे, मेरे पास—गोद में आओ। तुम्हें और भी खिलौने दूँगा। आ जा, आ जा, ओ-ओ······बड़ा राजा बेटा है!'—पुचकारते हुए अजीत ने पल्लव को गोद में उठा लिया।

'जाओ बेटी, तुम भी गोद में बैठ रहो। ये तुम्हारे मौसा

जी न हैं ! जाओ !' सरिता भी झिझकती-सकुचाती अपने नए मौसाजी की गोद में चली गई ।

कुछ देर तक अजीत दोनों बच्चों के साथ खेलता रहा । उनसे मेल-मुहब्बत बढ़ाता रहा और माला यह दृश्य देखती रही—हँसती रही ।

जब खेल खत्म हुआ तो दाई दोनों बच्चों को दूध पिलाने के लिए अन्दर ले गई और माला-अजीत अकेले ही लॉन में बैठे रहे ।

'तो मैं किरण को क्या जवाब दूँगा ? कब चलोगी हमारे घर ?'

'मैं तो अभी चली चलूँ, मगर नौकरी का बन्धन है । यहाँ की परिस्थिति सब समझकर आपको लिखूँगी, तो आप मुझे लेने आ जाएँगे ?'

'अवश्य ।'

'अजीत बाबू ! मैं बहुत थक-सी गई हूँ । मेरी स्थिति उस वृक्ष की तरह है जो आँधी-तूफान के आघात से अपने डालों-पत्तों से बिछुड़ कर अकेला किसी मैदान में खड़ा हो । मुझे एक सहारा चाहिए—एक नीड़ । इसकी जितनी जरूरत मैं आज महसूस करती हूँ उतनी कभी भी न की थी । मेरी यह आन्तरिक इच्छा रहती है कि मैं आपके चरणों पर लोट जाऊँ

और आप मेरे सर को सहलाते-सहलाते एक सहारा देते जाइए। फिर तो मैं इस भवसागर को पार कर जाऊँगी—चाहे कितना भी आँधी-पानी आए—कैसा भी मौसम रहे। आपका चरण ही मेरा नीड़ होगा और आपकी तथा किरण बहन की शुभकामना ही एकमात्र सहारा।···आप तो जानते ही हैं—जीवन में मुझे कभी भी, कहीं भी, प्रेम न मिला—प्यार न मिला। कहीं मिला भी तो वह आपके ही साये में और जब वह घनी छाँव उठ गई तो मैं विधवा हो गई—सचमुच विधवा। आप मेरे सुहाग को मुझे फिर लौटा देंगे? उस घनी छाँव तले फिर मुझे ठौर देंगे? आज मैं उसी की भीख माँगती हूँ, अजीत बाबू! —उसी की। यदि वह साया मेरे सर से कभी न उठा रहता तो मैं विधवा न होती। मगर आप तो·······।'

वह हठात् चुप हो गई। अजीत उसे आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा है।

'आप चुप क्यों हैं अजीत बाबू? मैं किनारे पहुँच रही हूँ और आप खामोश हैं!'

'खामोश नहीं हूँ माला! तुम जो माँग रही हो वह तुम्हें बिना माँगे ही मिल चुका है। अब भी तुम्हें विश्वास नहीं होता?·······'

'मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी अजीत बाबू—ऐसी ही।' माला की आँखें भर आईं।

'तुम रो रही हो माला?'

'हाँ, ये ख़ुशी के आँसू हैं। जाने कितने साल बाद··· आज···ये···मेरी आँखों में फिर समा पाए हैं।'

माला का हृदय भरा है। आँखें भी भरी हैं। अजीत का गला भी भर आया है। चाहकर भी वह कुछ कह नहीं पाता।

·········कि ताँगे पर सवार मिसेज़ शरण पहुँच जाती हैं। माला संयत हो ताँगे की ओर बढ़कर उन्हे उतार लाती है और अजीत से परिचय कराती है—'ताईजी! आप ही हैं अजीत बाबू। आपसे मिलने के लिए बहुत ही इच्छुक हैं।'

'आप जैसी महान् महिला से मिलने के लिए कौन न इच्छुक होगा? आपने माला को गाढ़े समय में सहायता दे जिस महानता का, जिस उदारता का परिचय दिया है, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।'

'बेटा! यह तो मेरा कर्त्तव्य था। यदि ऐसे समय में अपनी छात्रा की सहायता न करती तो मै अपने धर्म से च्युत हो जाती।·······'

कुछ क्षण को सभी चुप रहे।

…'और मेरे लिए तो माला वरदान बनकर आई है। मैं भी अकेली रहती हूँ। एक ही पुत्र और वह भी शादी नहीं करता—सैनिक जीवन बिता रहा है। इतना बड़ा मकान, मगर रहनेवाला कोई नहीं। इसीलिए माला आज मेरे लिए सब-कुछ है—छात्रा, मित्र, संगिनी, गार्जियन—सब-कुछ। इसके बच्चे नानी-नानी कहते जब मेरे गले से लिपट जाते हैं तो मैं गद्‌गद् हो जाती हूँ'—मिसेज़ शरण ने, हँसते-हँसते उत्साह में भर कर कहा।

'आप उस जन्म में माला की माँ रही होंगी।'

'हो सकता है। मेरा भी कुछ ऐसा ही अनुमान है।'

कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर अजीत जाने को खड़ा हो गया और बोला—'आज रात की गाड़ी से मुझे वापस चला जाना है। कल ऑफिस है। …तो अब आज्ञा दें। …प्रणाम।'

'खुश रहो बेटा, जियो।'—मिसेज़ शरण ने आशीर्वाद दिया।

माला अजीत को ताँगे तक पहुँचाने गई। जब अजीत ताँगे पर चढ़ गया तो माला ने कहा—'फिर कब आना होगा?'

'शीघ्र ही आऊँगा। घबड़ाओ मत। पत्र बराबर लिखते

रहना। देखो, शायद अगले इतवार को फिर आऊँ। फैक्टरी के काम से आना पड़े।'

जब तक ताँगा ओझल न हो गया, दोनों एक-दूसरे को देखते रहे और मिसेज शरण का चपरासी दोनों को देखता रहा—एक कौतूहल, एक शंका की दृष्टि से—ऐं! यह कौन है…कौन ?

माला जब फाटक बन्द कर अन्दर आई तो उसने जरा मुस्कुराते हुए पूछा—'माला दीदी! बाबू तुम्हारे कौन हैं? आज सुबह स्कूल में भी मैंने इन्हें देखा था।'

'दातादीन! हमारे पुराने… जान-पहचान के हैं। हमलोगों के साथ बनारस में रहते थे।'

'अच्छा…।' वह चुप हो रहा। माला को उसकी सूरत अच्छी न लगी।

अजीत जब घर पहुँचा तो किरण ने पहला प्रश्न पूछा—'माला को नहीं लाए न! मै जानती थी, आप झूठ बोल रहे थे—।'

'भई, नाराज न हो। वह इतनी जल्द कैसे आती? आखिर नौकरी कर रही है। छुट्टी मिले तब तो—अभी देर है।'

'कितनी देर है? कब आ पाएगी?'

'वह छुट्टी के लिए दरख्वास्त दे रही है। जैसे ही छुट्टी मिलेगी, वह मुझे खबर कर देगी; तब मैं उसे लेने जाऊँगा।'

किरण ने अजीत से माला का पूरा हाल सुना। अब वह प्रसन्न है क्योंकि अपने पति को प्रसन्न और शान्त पाती है। अपने काम में और अपने परिवार में उनका मन रम गया है।

समय के पर होते हैं। यों आया और यों भागा। न आते देर, न जाते देर। अजीत अक्सर लखनऊ आता, एक-दो दिन ठहरता, माला की खोज-खबर ले घर लौट जाता। माला इतने में ही सन्तुष्ट हो जाती। समझती, एक साया—एक वरदहस्त है उसके माथे पर। एक बार लता और राज बाबू भी आए थे। कार्लटन होटल में ठहरे थे। लखनऊ में तफ़रीह कर, माला से भेंट-मुलाकात कर लौट गए। उन्हीं दिनों इत्तफ़ाक ऐसा कि अजीत भी आ टपका लखनऊ में। मिसेज़ शरण के घर पर अजीत की दोनों से भेंट हो गई। जबतक अजीत वहाँ रहा, दोनों ने कुछ कहा-सुना नहीं; मगर अजीत के जाते ही लता ने तूफ़ान उठा दिया—'क्यों माला! तुम्हारे यहाँ यह फिर पहुँचने लगा?…नालायक! बदतमीज़ '

'…………………'

'तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है माला ! इसे यहाँ क्यों आने देती हो ?—मक्कार !'—राज बाबू ने दाँत पीस लिए ।

'अजीत बाबू ने मेरा क्या बिगाड़ा दीदी ? इनपर ख्वाम-ख्वाह क्यों तुम दोनों नाराज़ हो रही हो ?'—माला ने बड़ी नम्रता और करुणा से कहा ।

'यदि अब तक कुछ न बिगाड़ा तो अब बिगाड़ देगा ।'

'दीदी ! मेरा तो सब कुछ बिगड़ चुका, मिट चुका । अब क्या बनना-बिगड़ना बाकी है ? मैं तो अब मुक्त हूँ । मेरा तो न अब कोई अपना है न कोई पराया । बस—'ज़िन्दगी एक फ़र्ज़ है, जिए जा रही हूँ ।'....

'ख़ैर, तुम जानो, तुम्हारा काम जाने । हमें क्या लेना-देना ! तुम नाबालिग नहीं कि तुम्हें सीख दूँ ।'

दोनों गुस्से में बुत हो उठे और चल दिए ।

मिसेज़ शरण दूसरे कमरे में बैठी-बैठी सारी बातें सुन रही थीं । दोनों के जाने के बाद कह बैठीं—'माला ! यौवन विधवा के लिए पाप है ! ओह, कुछ न पूछो; मैं खुद भुक्तभोगी हूँ । जाने कितने किस्से मेरे जीवन के विषय में लोगों से सुन लो—जिनका मुझे स्वयं ज्ञान नहीं । मगर जैसे-जैसे उम्र ढलती गई, किस्से भी घटते गए । और तो और—इस मरदुए दातादीन को न देखो । जब अजीत बाबू लौट जाते हैं तो पूछ बैठता है—

'इनके का लागत हौं। बार-बार आना कैसा तो लागत है। बरिज क्यों न देत हौ मेम साहिबा?' मैं क्या कहती? उसे जरा भी मुँह नहीं लगाती—डाँट देती हूँ।'

माला उदास हो गई है—रुआँसा चेहरा--सूनी-सूनी आँखें।

'क्या बेसिर-पैर की सोचती हो? जाओ, 'क्लास-नोट' तैयार करो—कल तुम्हें ऊँचे दर्जे में भी पढ़ाना होगा। चिन्ता न करो। बच्चों को तबतक मेरे पास भेज दो।'—मिसेज शरण का वात्सल्य बोल उठा।

बहुत चाहकर भी माला किरण से मिलने न जा सकी। श्री नवल प्रभाकर, मंत्री, बालिका-विद्यालय के पास उसके 'कनफरमेशन' का मामला पेश है और इसीलिए इस समय कहीं भी नहीं जाना चाहती।

एक दिन दानादीन ने आकर कहा—'मालाजी! मंत्रीजी के यहाँ से बुलावा आया है। शाम के छः बजे आपको उनके घर पर जाना है। आपकी अर्जी के विषय में कुछ पूछ-ताछ करेंगे। अभी फोन आया था।'

सन्ध्या समय काले कोर की सफेद साड़ी पहने माला जब मंत्रीजी के घर पहुँची तो पता चला, नवलजी ऑफिस में बैठे फाइल देख रहे हैं।

भागते किनारे

माला कार्ड भेजवाकर ड्राइंग रूम में बैठ गई। वहीं दो-चार और भी मिलनेवाले बैठे थे। पहले उनका काम खतम कर उन्हें विदा करके नवलजी ड्राइंग रूम में ही आकर बैठ गए।

नवलजी शहर के नामी-गरामी वकील हैं। सुन्दर व्यक्तित्व, सुन्दर 'प्रैक्टिस'। उम्र यही चालीस के लगभग। गोरा-चिट्टा रंग—गुलाबी होंठ—गंजा सर। दोहरा बदन—ऊँचा क़द।

'माफ करेंगी, मैंने आज भी आपको बहुत इन्तज़ार कराया। आप जब भी आती हैं तो मैं इतना काम में फँसा रहता हूँ कि आपका काम जल्द खतम ही नहीं कर पाता।'

'नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।'

'क्या बताऊँ? काम से कभी फुर्सत ही नहीं मिलती कि किसी के साथ दो घड़ी बैठ सकूँ—बातें कर सकूँ। दो स्कूल, दो कॉलेज, दो मदरसों का भार; फिर दिनभर कचहरी में खटना और सुबह-शाम 'केस' के लिए तैयार होना—जान आफ़त में रहती है। आपसे कितनी बार चाहा कुछ जमकर बातें करूँ—स्कूल के विषय में जानकारी हासिल करूँ, मगर समय कहाँ! ख़ैर, अपनी मुसीबतों की कहानी सुनाकर आपको मैं परीशान क्यों करूँ? आपका जीवन तो मुझसे कहीं ज्यादा दर्दनाक है।

मिसेज शरण ने आपकी पूरी कहानी मुझसे सुनाई थी और इसीलिए कमिटी में मैंने आपकी ओर से पूरी बहस की और आपकी बहाली करवाई। मुझे बड़ी खुशी है कि आपके रेकर्ड पिछले छः महीनों के बहुत सुन्दर हैं और अब कमिटी आपके 'कनफरमेशन' के सवाल पर राय-मशविरा करने जा रही है। भला आपका 'कनफरमेशन' क्यों न होगा?······और, फिर मैं जो हूँ। आप चिन्ता न करें।'—नवल प्रभाकर जी इतना कहकर चुप हो गए। सिगार निकाल कर जलाया और धुएँ का छल्ला उड़ाते हुए फिर बोले—'मालाजी! मेरी भी ज़िन्दगी कोई ज़िन्दगी है?—दिनभर खटना और रातभर जगना। जब से मेरी बीवी इस दुनिया से उठ गई, घर में कोई भी औरत नहीं और चार-चार नादान बच्चे-बच्चियाँ। रातभर उनकी सार-सम्हाल का कठिन काम। दाई-नौकर पर उन्हें कितना छोड़ूँ? रात में सभी नौकर थककर सो जाते हैं। फिर मुझे ही बच्चों को थपथपाकर सुलाना और कभी-कभी शीशी से दूध भी पिलाना पड़ता है।'

'आप तो अमीर आदमी हैं—कोई बढ़िया 'गवर्नेस' क्यों नहीं रख लेते? बच्चों की ठीक से देख-भाल करती।'

'अखबार में बहुत इश्तहार निकलवाए, कितनी आईं भी, मगर मनलायक कोई न मिली।······उफ़,······यह भी···

कोई ज़िन्दगी है ? कोई सर सहलानेवाला नहीं, कोई भर मुँह बात करनेवाला नहीं। आखिर कहाँ तक ऑफिस में समय गुजारूँ ?'

माला आँखों से फर्श को देख रही है और कानों से नवलजी की बातें सुन रही है।

'मालाजी ! हर औरत या मर्द ज़िन्दगी में एक सहारा ढूँढ़ता है—एक अभिभावक। हर की चाह होती है कि बीमारी में उसके माथे को कोई सहलाए, हर की कोशिश रहती है कि ढलती उम्र के साथ कोई उसका साथ दे; मगर मेरी··· हाय री मेरी किस्मत ! मेरा कुछ भी न हो सका—मैं कुछ भी न पा सका। बदकिस्मत !·······'

कि उनकी बेटी वल्लरी दौड़ती चली आई और उनकी गोद में बैठ गई।

'देखिए इसकी हालत। कल बुखार में बुत थी और आज नंगी दौड़ रही है। नौकर-दाई परवा नहीं करते। कितनी उन्हें गाली दूँ ? कितनी डाँट-फटकार करूँ ? और यह भी ऐसी है कि मैं ही इसे कपड़ा पहनाऊँ तो पहनेगी, मैं ही इसे खिलाऊँ तो खाएगी। अजीब ज़िद्दी है।·······क्यों वल्लरी ! कपड़े क्यों नहीं पहनती ? नंगी क्यों घूम रही हो ?'

'पापा ! गलमी लग लही है। नहीं पहनी गूँ।'

'बेटी, फिर बुखार आ जाएगा। चलो-चलो, कपड़े पहनाकर तुम्हें सुला दूँ·········मालाजी ! आप कृपया कल फिर आने का कष्ट करें। कल मीटिंग है। उसके बाद आपसे बातें करूँगा। अच्छा होता आप आठ बजे रात तक आतीं।········ देखिए मेरी हालत। आपको भी मुझपर दया आती होगी—है न यह बात ?'

बिना कुछ उत्तर दिए, 'नमस्ते' कहती माला उठी और चल दी। नवलजी उससे कोई उत्तर सुनने को लालायित ही रह गए।

× × ×

दूसरे दिन ठीक आठ बजे रात में माला श्री नवल प्रभाकर के घर पर पहुँच गई। नवलजी लॉन में अकेले बैठे सिगार पी रहे हैं। इधर-उधर की बत्तियाँ बुझी हुई हैं—लॉन में कुछ अँधेरा-सा दिखता है। ऑफिस भी खाली है—मालूम होता है, आज जल्द ही नवलजी काम से निबट गए हैं।

माला को देखते ही वह सायबान तक चले गए और उसे लिए फिर लॉन में चले आए।

'मिठाई खिलाइए। आपका 'कनफरमेशन' हो गया।'—उन्होंने बड़े तपाक से कहा।

माला यह खबर पाकर बड़ी खुश हुई और उन्हें धन्यवाद

देती हुई बोली—'बड़ी कृपा हुई आपकी मुझपर। आपका एहसान मैं कभी न भूलूँगी।'

नवलजी ने अपनी कुर्सी माला के समीप खींचकर बड़े प्रफुल्लित होकर कहा—'वाह, आप भी मुझे शर्मिन्दा करती हैं ? आपके जैसी योग्य शिक्षिका पाकर हमारा बालिका-विद्यालय धन्य-धन्य हो गया। मिसेज़ शरण ने लिखा है कि आपकी विशेष योग्यता संगीत में है—वाद्य और गान दोनों में। अब कमिटी ने तय किया है कि अगले साल से संगीत-क्लास भी खोला जाय और आपको कुछ और तरक्की देकर उसका इंचार्ज बना दिया जाय।'

'यह तो आपकी तथा आपकी कमिटी की महत्ता है।'

'वाह, हम तो आपको पाकर गौरवान्वित हो गए हैं। उस दिन विद्यालय-स्थापना-दिवस को आपने जो भजन गाया था—वही...वही....'एरी मैं तो प्रेम दिवानी'......उसे सुनकर कमिटी के सभी सदस्य बड़े प्रभावित हो गए हैं। फिर मिसेज़ शरण की जो सिफ़ारिश हुई तो मुझे बड़ा बल मिला। बस, मेरा प्रस्ताव तो चुटकियों में पास हो गया।'

नवल बाबू का सिगार बुझ गया तो उन्होंने फिर से उसे जलाया और कुछ सोचते हुए धुआँ उड़ाने लगे।

'मालाजी ! मैं आपको छः महीने से जानने लगा हूँ

और इस बीच आपसे आत्मीयता भी काफ़ी हो गई है। इसी आत्मीयता के बल पर मैं अपनी एक अर्ज़ी आपके दरबार में पेश कर रहा हूँ। आशा है इन्कार न कर आप उसे स्वीकार ही करेंगी।'

'वाह, आप भी कैसी बातें कर रहे हैं? मुझसे जो भी आपकी सेवा हो सके···मैं अपने को धन्य-धन्य समझूँगी।'—माला उन्हें कुछ कौतूहल से देखने लगी।

'बस, आपसे मुझे यही उम्मीद भी थी। आप मेरी हालतों से परिचित हैं। अब दिन इस तरह बीत नहीं पाते। रात तो पहाड़ हो जाती है। फिर बाल-बच्चे बिलल्ला हो रहे हैं। आपही को सबकी लाज रखनी है। एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।'

'मैं आपकी बात समझी नहीं·······' वह कुछ अकचकाकर उन्हें देखने लगी।

नवलजी ने चट उसका हाथ पकड़ लिया और हल्की मुस्कान के साथ कहा—'सीधी-सादी बात—मेरी जीवन-संगिनी बन जाइए। बस, दोनों का बेड़ा पार। मेरी और आपकी समस्याएँ एक-सी हैं। दोनों का निदान यही है। पल्लव और और सरिता मेरे भी बच्चे होंगे और मेरे आपके। यही मेल-जोल तो हमारी नई गिरस्ती की नींव होगी। सिर्फ आपके 'हाँ'

की देर है। फिर तो यह गृहिणी-बिना सूनी-सूनी अट्टालिका इठला उठेगी, मेरा बर्बाद दिल आबाद हो जाएगा। समाज भी इस सम्बन्ध को सहर्ष स्वीकार कर लेगा क्योंकि हम कोई अनुचित माँग तो उससे करते नहीं। मैं आपके सामने एक भिखारी हूँ—भिखारी।'—नवलजी धधाई आँखों से उसे देखने लगे।

माला एक झटके से हाथ छुड़ाकर अलग खड़ी हो गई और उसने सिर्फ इतना ही कहा—'मुझे क्षमा कर दें मंत्रीजी, मैं एक····।'

और वह तेजी से फाटक की ओर लौट पड़ी। नवलजी किंकर्त्तव्यविमूढ़ वहीं खड़े-के-खड़े रह गए। यवनिकापतन इस तेजी से हो जाएगा—ऐसी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी।

माला जब घर पहुँची तो उसके नेत्रों से चिनगारी फूट रही थी। नख से शिख तक गुस्से में बुत। अन्दर आते ही मिसेज शरण ने पूछा—'बेटी, मेरी मिठाइयाँ नहीं लाई?'

'हाँ, लाई हूँ। लीजिए···।'

'अरे, मजाक करती हो? यह तो कागज का एक टुकड़ा है।'

'पढ़ लें उसे।'

वह चश्मा लेकर पढ़ती है—'ऐं' ! यह क्या ? तुम इस्तीफा दे रही हो ?—मिसेज़ शरण चकित हो उसे देखने लगीं।

'हाँ, अब मैं आपके स्कूल में नहीं रह सकती। मुझे माफ़ कर दें।'

'कारण ?'

माला एक सुर में सारी कहानी कह गई। मिसेज़ शरण सर झुकाए सब सुनती रहीं—सुनती गईं। उनके चेहरे का रंग बदलता गया। फिर तमतमाकर बोलीं—'मगर, इसका निदान इस्तीफा नहीं है माला! अबला बनकर जीने का युग अब बीत गया। अब तुम सबला हो—सबला। समझी !' —उनकी आवाज़ में ग़जब की बुलन्दी है।—'यदि तुम मैदान छोड़कर भाग गई तो समाज के ये आततायी आए दिन हमें सताते ही रहेंगे। इनका जमकर मुकाबला करना है हमें, नहीं तो इस स्वतन्त्र देश की नारियों का कल्याण नहीं होगा। देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ भारत की नारियों की भी बेड़ियाँ टूट चुकी हैं। तुम अपनी शक्ति जगाओ—तुम सशक्त हो—अशक्त नहीं। समझी ? मैं इस मामले को कल ही कमिटी में पेश करूँगी और तुम्हारे इस्तीफे के बदले मंत्री महोदय से ही इस्तीफा दिलाऊँगी। इन हरकतों को मिसेज़ शरण अब बर्दाश्त नहीं कर सकती। मैंने भी जीवन के कितने वसन्त और

पतझड़ देखे हैं—तूफ़ान भी आएगा तो देख लूँगी ।'—उनका खून खौल उठा ।

माला ने नारी का ऐसा उग्र, ऐसा ओजस्वी रूप कभी न देखा था । मिसेज़ शरण ने कागज के उस टुकड़े को टुकड़े-टुकड़े कर खिड़की से बाहर फेंक दिया और तमक कर कमरे में तेजी से टहलने लगीं ।

'क्यों, आज नाश्ता नहीं किया ?'
—किरण ने बड़ी आजिजी से पूछा ।

'हाँ, आज दिमाग़ काम नहीं कर रहा है । जबसे माला का पत्र आया है, मन भिन्नाया हुआ है । मिसेज़ शरण का साया उसे ज़रूर मिला मगर नवलजी से झगड़ा मोल लेकर वहाँ उसका रहना ठीक नहीं ।'—अजीत ने कहा ।

'तो क्या आप चाहते हैं कि नवलजी की वह बाँदी बनकर रहे ? मिसेज़ शरण का विरोध बिल्कुल ठीक है ।'—किरण का भी नारीत्व जाग उठा ।

'नहीं-नहीं, यह मैं नहीं कहता···परन्तु···परन्तु'

'परन्तु क्या ?'

'यही कि उसके सर पर अपने ही झमेले बहुत हैं—अच्छा होता यदि वह वहाँ से हट जाती । समाज की रूढ़ियों से लड़े, ज़माने के तेवर से लड़े, नरक के इन कीड़ों से लड़े,

फिर अपने-आपसे लड़े—इस चौतरफ़ी मार को वह सह न सकेगी—टूट जाएगी।......भय है, कहीं उसके पैर न उखड़ जायँ। अभागिन बेचारी.......'

'तो रास्ता क्या है?'

'वही तो ढूँढ़ रहा हूँ।...मैं अभी फैक्टरी-मैनेजर के यहाँ जा रहा हूँ। उनसे प्रार्थना करूँगा कि मजदूरों के लिए नारी-कल्याण-मन्दिर जो खुला है उसमें माला को रख लें तो सब समस्या हल हो जाय। मेरी नज़रों के सामने वह रहेगी तो मैं उसे हर प्रहार से बचाता रहूँगा। उसके जीवन के साथ-ही-साथ दो नादान बच्चों का भी जीवन जुड़ा है। यहाँ फैक्टरी से सब कुछ मिलेगा—सुन्दर वेतन, मकान, कोयला, दवा-दारू....और तो कोई रास्ता नज़र नहीं आता।'

'वाह! इससे बढ़कर और रास्ता क्या होगा? यह तो बड़ा सुन्दर सुझाव है। आप मुझे भी अपने साथ लेते चलिए। मैं फैक्टरी-मैनेजर की बीवी से शिल्पकला-केन्द्र में अक्सर मिलती रहती हूँ। मैं भी अपनी ओर से सिफ़ारिश करूँगी।'

'तो चलो, अभी चलो। बात बन गई तो आज ही अर्जी देकर मैं लखनऊ भाग जाऊँगा और समय पर लाकर 'इन्टरव्यू' करा दूँगा।'

फैक्टरी-मैनेजर के पास कोई बहुत अच्छे आवेदन नहीं आए थे। उन्होंने माला की दरख्वास्त ले ली और 'इन्टरव्यू' कार्ड भी दे दिया। अजीत को उन्होंने काफ़ी आश्वासन भी दिया।

अजीत को लगा कि उसके माथे से बड़ा भार टल गया। एक आस भी बँध गई, अब माला का जीवन एक रास्ते पर आ जाएगा। वह शाम की गाड़ी से लखनऊ रवाना हो गया। इधर किरण ने अमिताभ को नई मौसी के आने की बात बताई। वह ऐसा ललक गया कि कभी सोता ही नहीं।

अजीत का तार पाने पर किरण अमिताभ को लेकर स्टेशन गई। गाड़ी आने में कुछ देर थी मगर अमिताभ उतावला हो रहा—'अम्मा, अभी तक गाड़ी क्यों नहीं आई?'

'घबड़ाओ नहीं बेटा, आएगी—तुरत आएगी।'

लम्बी प्रतीक्षा के बाद जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँची तो अमिताभ अपने पापा के डब्बे की ओर दौड़ा। किरण भी उसके पीछे-पीछे दौड़ी।

माला ने ट्रेन से उतरते ही किरण को गले से लगा लिया और अमिताभ को गोद में उठाकर चूम लिया।

'ले बेटे, ले! ये टॉफ़ी के डिब्बे—ये खिलौने। पापा

को न देना—ऐं ?'—माला ने एक बार फिर अमिताभ का मुख चूम लिया।

'माला ! तुमने तो मुझे तड़पाकर रख दिया। पल्लव और सरिता नहीं दिखते। देखो, अमिताभ का भी चेहरा उतर गया। बड़ा ललक गया था। उन्हें देखने को जी ललच रहा है।'—किरण ने उलाहना दिया।

'क्या करूँ बहन ! मिसेज़ शरण उन्हें आने ही नहीं देतीं। वे उनसे हिल-मिलकर इतने सट गए हैं कि अलग करना भी एक समस्या ही है। खैर, यहाँ सब ठीक-ठाक कर एक बार जाऊँगी तो उन्हें पकड़ लाऊँगी।'—माला ने अपनी मजबूरी जताई।

'इनसे मैंने खास तौर से कहा था, बच्चों को न छोड़िएगा।' —किरण ने फिर मीठी शिकायत पेश की।

'अजी, माला को ही लाना मेरे लिए एक कठिन समस्या थी। मिसेज़ शरण इसे कतई छोड़ने को तैयार न थीं। किसी तरह घंटों माथापच्ची करके तो माला को छुट्टी दिलाई। अब उनसे बच्चों को छीन लाता तो वह आसमान सर पर उठा लेतीं। माला को लाने में मुझे मामूली झंझट उठाना पड़ा है ?'

'खैर, चलो, वे भी आ ही जाएँगे।'

फैक्टरी के पास ही रेलवे-स्टेशन है। सामान कोई खास

नहीं है। यही हैन्डबैग और अटैची। सभी पैदल ही क्वार्टर की ओर चल पड़े।

कुछ देर के बाद नहा-धोकर माला किरण के साथ चौके में घुस गई और मिल-जुलकर नाश्ता बनाने लगी।

'क्या तमाशा कर रही हो माला! रातभर की ट्रेन की थकावट...'

'वाह बहन, तुम भी कैसी बातें करती हो! आज पूरी और एक तरकारी मैं ही बनाऊँगी।'

माला ने किरण की एक न सुनी। पूरी और तरकारी बनाकर ही वह चौके से निकली।

खाने की मेज पर चारों बैठे हैं। अजीत पूरी और तरकारी का एक कौर लेते ही जोर से हँस पड़ा।

'क्यों, क्या बात है?'—किरण ने पूछा।

'इन पूरियों और तरकारियों में जाने कितने अतीत के चित्र छिपे हैं। इनका स्वाद पाते ही बनारस की कितनी स्मृतियाँ जाग पड़ीं। जाने कितने दिनों तक इस स्वाद की पूरी-तरकारी खाए बिना मैं एक दिन भी नहीं रहता था। क्यों माला, ठीक है न?'

'हाँ, माँ ने मुझे खाना बनाना सिखाया था। वह बड़ा स्वादिष्ट खाना बनाती है।'—माला ने मुस्कुरा दिया।

सभी हँसकर चुप हो गए। कुछ देर को वातावरण शान्त और थिर हो गया तो माला ने कहा—'किरण बहन से मिलकर आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। नारी का ऐसा सुन्दर रूप आज तक मैंने नहीं देखा था अजीत बाबू! मेरी बहुत दिनों की तमन्ना थी कि बहन से मिलकर केवल एक बात पूछूँगी— 'आखिर तुम कितनी महान् हो! तुम्हारी महानता के सामने मेरा माथा झुक जाता है।.........।'

'वाह, यह अच्छी रही! मेरी बड़ाई कर मुझे लज्जित न करो।'—किरण बोली।

'ना बहन, बड़ाई नहीं—मैं सच कहती हूँ। यदि तुम न होती तो अजीत बाबू के इतने समीप मैं आ पाती? यह तो तुम हो कि इनका प्यार, इनका सद्भाव—इनका आश्रय मुझे मिल पाया।'—माला का गला भर आया। वह इससे ज्यादा कुछ बोल न सकी। किरण हँस पड़ी। अजीत मौन रह गया।

✣

'इन्टरव्यू' तो महज एक 'फॉरमॉलटी' रही। उसके बाद ही फैक्टरी-मैनेजर ने कहा—'सबसे ज्यादा नम्बर माला को ही मिले हैं। पूरी उम्मीद है, उसी को यह नौकरी दी जाएगी।'

माला, अजीत, किरण और अमिताभ बड़े खुश हैं। दो दिन कैसे गुजर गए—किसी को पता ही न चला। भविष्य के जाने कितने नक्शे बन गए इन अड़तालीस घंटों में। जिन्दगी ने एक नई करवट ली—एक नया तारा उग आया क्षितिज पर। आज का दिन भी खुशगप्पियों में ही कट गया।

शाम को सभी आँगन में बैठे हैं—चाय का दौर चल रहा है। आज गर्म-गर्म पकौड़ियाँ माला ही छान रही है।

अजीत कह बैठता है—'माला! ऊहूँ, बनारस की उस चाटवाली बुढ़िया सदृश पकौड़ियाँ तुम नहीं उतार पाई—कुछ कमी है।'

'हाँ, मैंने लाख कोशिश की मगर उसने मसाले नहीं बताए। कहती—मसाले बता दूँगी तो मेरी दूकान पर कोई न आएगा।'—माला ने हँसते हुए कहा।

कि किसी ने बाहर से आवाज़ लगाई—'अजीत बाबू हैं?'

'कौन है?'

'मैं!—शकरुल्ला।'

'अभी आया—।'

'क्या, मेरे लिए अब पर्दा हो गया? ड्योढ़ी लगेगी?'

'नहीं-नहीं, अभी आया—।'

तब तक मैनेजर का पी० ए०, शकरुल्ला धड़धड़ाता अन्दर घुस आया और ज़ोरों का ठहाका मार कर बोला—'बड़े छिपे रुस्तम निकले यार! सुना है फिर से घर बसाने जा रहे हो। जाने कहाँ से एक विधवा उड़ा लाए हो। नौकरी भी दिला दी।'

'बदतमीज़! चलो-चलो, बाहरवाले कमरे में बैठा जाय।'

'भई, एक प्याली चाय—'

'चलो, वहीं अमिताभ लाएगा।'

'उफ़! जो आजतक मुझसे न हुआ, तुम···तुम करने जा रहे हो·······पर्दा····।'

अजीत उसे घसीटता बाहर ले गया। किरण भी सकपका गई। माला अचम्भित है।

कुछ देर को सभी चुप रहे। किरण को कुछ सूझ ही नहीं रहा है कि क्या बोले—क्या कहे—कैसे कहे!

'माला, शकरुल्ला बड़ा मुँहलगा है—मैनेजर का पी० ए० जो ठहरा। एक नम्बरी लम्पट और मज़ाकिया। इसकी बातों का ख्याल न करना।'—किरण ने किसी तरह कहा।

वह चुप है। सारा वातावरण क्षणभर को स्तब्ध है। अमिताभ चाय बाहर ले जाता है।

'........................'

'किरण बहन! किरण बहन!!'—किसी ने फिर आवाज़ दी।

'कौन?'

'मैं हूँ,—पहचानो...इजाजत है?'

'इजाजत? यह क्या कह रही हो शनो दीदी?'

'सुना, अब तुम्हारे यहाँ ड्योढ़ी लगेगी। पूछकर अन्दर आना होगा।'

'आखिर क्यों—?'

'यह तो तुम जानो! सुना, अजीत बाबू आशना लाए हैं। यह उम्र और यह शौक़!'—कहती डॉक्टर की बीवी शनो

आँगन में आई और ठमक कर बैठ गई। साथ-साथ पोस्टमास्टर की बीवी रामप्यारी भी है। माला धीरे-से उठकर अन्दर चली गई। उसे दोनों ने घूरकर देखा भी।

'यह क्या आग तुमने लगवा दी है? सारे फैक्टरी में कुहराम मच गया है।'—रामप्यारी ने भी जुल दिया।

'छीः—छीः! और वह भी विधवा! • बच्चों की माँ! यह भी लगन में कोई लगन है? और, तुम कैसी बीवी हो कि शह दिए जा रही हो? ऐसी सतवन्ती बनने से काम न चलेगा। तुम्हें वह घर से निकलवाकर रहेगी—हाँ! ढलती उम्र की यारी तबाही है—तबाही।'—शनो ने फिर आग उगली।

'आ बेटा, आ।·········अमिताभ बेटा! नई माँ कैसी है? पलटू कह रहा था कि स्टेशन पर ही खिलौने मिल रहे थे तुम्हें!'—रामप्यारी ने फिर नहले पर दहला दिया। अमिताभ लजा गया।

किरण को जैसे सर्द मार गया। उसे कोई उत्तर नहीं सूझ रहा। चुप है—बुत।

अजीत को बाहर से अन्दर आने की हिम्मत न होती। क्या सोचा था और क्या हो गया!

बाहर शकरुल्ला अजीत को नसीहतें दे रहा है और अन्दर

शनो और रामप्यारी किरण की खूब खबर ले रही हैं। घंटों यह तमाशा चला।

उधर गोधूली की अँधियारी में बन्द कमरे में पड़ी माला बेज़ार आँसू बहा रही है—आँसू। दिल उसका छलनी हुआ जा रहा है। पलक मारते ही दुनिया बदल गई उसकी।

रात में खाने की मेज पर सभी बैठे हैं। सभी हँसने की, कुछ कहने की कोशिश करते हैं मगर हँस नहीं पाते, कुछ कह नहीं पाते। अप्रत्याशित परिस्थिति है, अप्रत्याशित वातावरण।

'घबड़ाओ नहीं माला! ज़रा भी चिन्ता न करो। यही इस दुनिया का अपना रंग-रवैया है। यहाँ फूलों के गुच्छे और जूतों के हार साथ-साथ मिलते हैं। जब यह दुनिया गाँधी जैसे सन्त को पहचान न पाई—उसकी भी हत्या कर बैठी—तो फिर हम जैसे अदनों की क्या बिसात? हमें वह छोड़ देगी? ...हाँ, तुम झुको नहीं—सीधी खड़ी रहो, तभी तुम्हारा कल्याण है।'—अजीत की आवाज़ में एक गम्भीर दृढ़ता है।

'हाँ बहन, यह सब होता ही रहता है। जहाँ चार रहते हैं वहाँ चार तरह की बातें भी होती हैं। किसका कितना सुना जाय!'—किरण ने भी कहा।

माला चुप। फिर कुछ इधर-उधर की बातें होती रहीं,

मगर मन सबका खिन्न है। सभी जल्द ही अपने-अपने बिस्तर पर चले गए।

× × ×

चार बजे भोर............

...ऐं ! मेरे कमरे का टेबुल-लैम्प क्यों जल रहा है ? क्या बात है ? मेरा दरवाजा भी खुला है !'—अजीत धड़फड़ाकर उठा। बाहर निकला तो देखा, बाहर जाने का दरवाजा भी खुला है—चोर आया क्या ?—हाँ, चोरी हो गई !

'किरण, उठो-उठो। सभी दरवाजे खुले हैं। माला को भी जगाओ। शायद चोरी हो गई !'—अजीत ने आवाज लगाई।

'ऐं ! माला के कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द नहीं ! ...बत्ती जल रही है मगर वह वहाँ नहीं है।....'बाथरूम' में गई होगी।...मगर नहीं, वह भी खुला है। उसकी अटैची भी गायब—हैंडबैग भी !'

अजीत सन्न हो गया।....तो वह चली गई ! माला चली गई—चली गई ! हाय, यह तो बड़ा बुरा हुआ !'

पति-पत्नी कुछ देर को जैसे पागल हो गए। कुछ सूझ नहीं रहा, अन्दर-बाहर करते रहे।

कि अजीत की नजर टेबुल-लैम्प के नजदीक ही रखी हुई

खुली डायरी पर पड़ी—ऐं ! मेरी डायरी !···हाँ, हाँ, अब याद आया—कल माला ले गई थी पढ़ने के लिए। मैं तो इसे तुम्हें भी नहीं पढ़ाता था मगर वह ज़िद पकड़ गई—जबर्दस्ती सेफ में से निकाल ले गई—ऐं ! यह तो उसी की राइटिंग है—डायरी के आखिरी पृष्ठ पर उसने कुछ लिख दिया है—

"अन्तिम पृष्ठ—आज माला चली गई। माला चाहती है, वह संघर्षों के बीच ही रहे। शायद उसका जन्म ही इसी के लिए हुआ है। मगर चिन्ता कैसी ? वह बहुत प्रसन्न जा रही है—मिसेज़ शरण की शरण में। उसे इतना तो भरोसा है ही कि मेरा प्यार, मेरा स्नेह, मेरी अटूट ममता उसे सदा मिलती रहेगी—चाहे वह कहीं भी रहे—कैसी भी रहे। यह भरोसा ही तो उसके संघर्षमय जीवन का सम्बल रहेगा। मन कहीं भी रमे, तन कहीं भी रहे—मगर उसका हृदय तो बस मेरे·······।

·······दुनिया उसे विधवा कहती है। हाँ, वह विधवा है, उसकी माँग का सिन्दूर धुल चुका है····मगर क्या सचमुच वह विधवा है ? वह तो मानती है कि उसने वैधव्य का यह अभिशाप अंगीकार किया—अपने सुहाग की लाली अचल करने को।···तो वह विधवा नहीं है ?—कदापि नहीं !—वह सदा

कहती—अँधियारी में तो रात्रि का सुहाग कोई देख न पाता, मगर उषा की लाली—वही नित-प्रति उगती हुई लाली—क्या उसके सुहाग की निशानी नहीं है ?……उसकी शिकायत है कि मैंने कभी भी उसका मन न रखा, मान न रखा। मेरी बात रखने को उसने अग्निपरीक्षा भी स्वीकार कर ली—इतना सब कुछ सह लिया सिर्फ मेरे लिए। अब वह मुझसे माँग रही है अपनी एक ही अतृप्त लालसा की पूर्त्ति—मृत्यूपरान्त अपनी सूनी माँग में मेरे कर का सिन्दूर…………।"